महात्मा हंसराज जन्म-शताब्दी पर प्रकाशित

सन्ध्या पर व्याख्यान

लेखक

महात्मा हंसराज

प्रकाशक

महात्मा हंसराज साहित्य विभाग,

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा,

निकट जिला कचहरी, जालन्धर

अजिल्द प्रति का मूल्य : एक रुपया

उपहार

श्री ________________________________ जी

____

____

की सेवा में सप्रेम भेंट

____

दो शब्द

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा की ओर से पूज्य महात्मा हंसराज जी द्वारा लिखित 'सन्ध्या पर व्याख्यान' जनता की सेवा में प्रस्तुत करते हुए हमें हर्ष है। यह पुस्तक महात्मा जी की जन्म शताब्दी के अवसर पर प्रकाशित की जा रही है। यह पुस्तक आज से ४२ वर्ष पहले छपी थी और फिर अप्राप्य हो गयी थी। इसकी एक प्रति डी. ए. वी. कालेज जालन्धर के लाजपत राय पुस्तकालय में सुरक्षित थी। उसी के आधार पर इस पुस्तक को प्रकाशित किया गया है। महात्मा जी की भाषा में उर्दू के शब्दों की मात्रा आज की हिन्दी के अनुपात से कुछ अधिक है। कठिन शब्दों के अर्थ ब्रैकट में दे दिए हैं। हम ने भाषा को बदलना उचित नहीं समझा। इस का विशेष कारण है। आर्य समाज का और महात्मा हंसराज जी का पंजाब में हिन्दी प्रचार के क्षेत्र में बड़ा हाथ रहा है। महात्मा जी की भाषा से स्पष्ट प्रकट होता है कि हिन्दी प्रचार में और हिन्दी भाषा के निर्माण में पिछली पीढ़ी को किस कठिनाई का सामना था और किस प्रकार वे उर्दू, फारसी और अरबी के शब्दों से छुटकारा पाने का प्रयत्न कर रहे थे। आशा है पाठक इस अमृतवाणी का आस्वादन करेंगे और सन्ध्या के विशेष महत्व को समझते हुए ईश्वर अभिवादन की ओर पग उठायेंगे।

महात्म जी की जन्म-शताब्दी के उपलक्ष्य में प्रिंसिपल श्री राम शर्मा रचित महात्मा हंसराज की जीवनी (अंग्रेजी में) भी छापी गयी है। इस पुस्तक का पाठकों ने बड़ी सहृदयता से स्वागत किया है। सभा की ओर से सामवेद का हिन्दी भाष्य भी शीघ्र प्रकाशित होने वाला है। यदि जनता का सहयोग निरन्तर प्राप्त होता रहे तो सभा सुन्दर साहित्य के प्रकाशन में बड़ा कार्य कर सकती है।

दानी महानुभावों से प्रार्थना है कि सभा के प्रकाशनों की बहुसंख्या में प्रतियां मंगवा कर अपने सम्बन्धियों और मित्रों में प्रचारार्थ बांटें।

जालन्धर

१०—१२—१९६५

विनीत

वेद प्रकाश मलहोत्रा

अधिष्ठाता, महात्मा हंसराज साहित्य विभाग

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
उपोद्घात	१
१. आचमन मन्त्रः	९
२. इन्द्रिय स्पर्श मन्त्राः	१२
३. मार्जन मन्त्राः	१५
४. प्राणायाम मन्त्राः	२०
५. अघमर्षण मन्त्राः	२७
६. मनसा परिक्रमा मन्त्राः	३४
७. उपस्थान मन्त्राः	४२
८. गायत्री मन्त्रः	६१
९. समर्पण मन्त्रः	७४

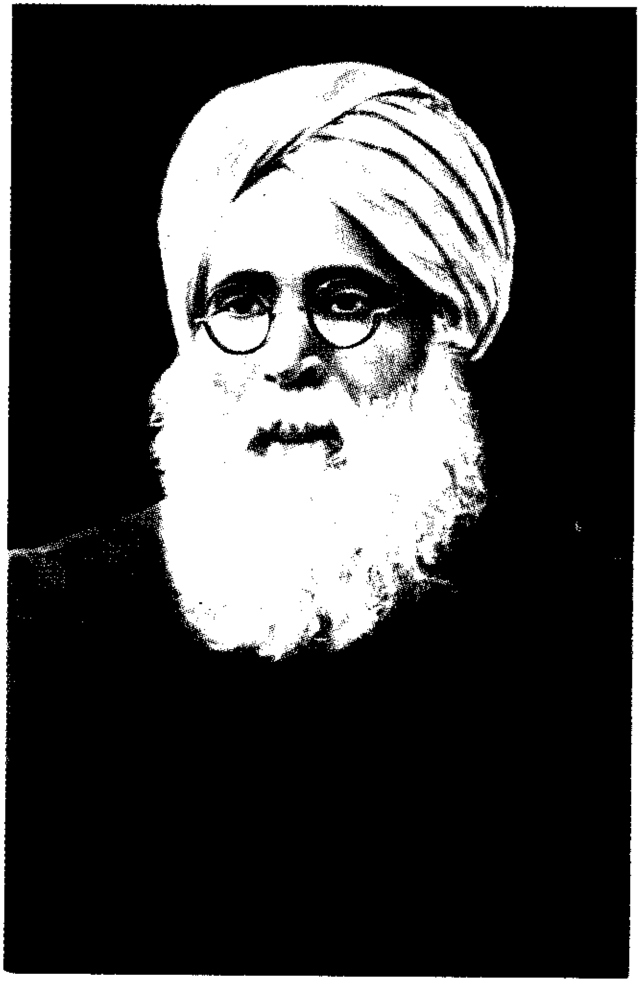

MAHATMA HANSRAJ

उपोद्घात

'सन्ध्या' संस्कृत के दो शब्दों 'सम्' और 'ध्या' से बना है 'सम्' का अर्थ है अच्छा और 'ध्या' का अर्थ ध्यान है। इस लिये सन्ध्या से मुराद उन मन्त्रों से है, जिन के ज़रिये से परमात्मा का ध्यान अच्छी तरह से किया जावे, और हम हृदय की सरलता और प्रेम, और आत्मा के दृढ़ विश्वास के साथ उन के चरणों में वास करते हुए उन से प्रार्थना कर सकें। वास्तव मे तो वेद का हर एक मन्त्र सन्ध्या में अथवा ब्रह्मयज्ञ में, जो सन्ध्या का दूसरा नाम है आ सकता है; मगर ऋषि लोगों ने दिव्य दृष्टि और परम सूक्ष्म बुद्धि से उन्नीस मन्त्रों को चुन कर उन को एक जगह एकत्रित कर दिया है। यह मन्त्र समूह और इन की तरतीब इस तर्ज़ से रक्खी गई है, कि आत्मा के उच्च से उच्च भाव उन के द्वारा तुष्ट हो सकते हैं, और उन की सहायता से हम अपने परम पिता और जगत् धर्त्ता से मिलाप पैदा करते हैं।

यूं तो हर एक दम जो परमात्मा के स्मरण में गुजरे बड़े पुण्यों का फल है, और अगर मनुष्य का एक २ रोम जुबान बन जाये, और उस की आयु सहस्र वर्षों की हो, तो भी परमात्मा के भजन रूपी ऋण को अदा नहीं कर सकता, तथापि ब्रह्मचर्य और गृहस्थ के अन्य कर्त्तव्यों को आवश्यक समझ कर मनुष्य की धर्म शक्ति को परिमित अनुभव करके ऋषियों ने सन्ध्या के लिये दो काल नियत किये हैं, जिन में सन्ध्या करना आवश्यक धर्म है। यह दोनों समय सन्धि समय के हैं अर्थात् जिस वक्त दिन और रात्रि का मिलाप होता है, वही समय परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना और उपासना का है। यह मिलाप दो कालों में होता है, प्रातःकाल जब

नक्षत्र अस्त होने लगें, उस समय से सूर्य के चढ़ने तक, और सायंकाल सूर्य के अस्त होने के समय से नक्षत्रों के उदये होने तक'' इन्हीं दो कालों में सब काम छोड़ देने चाहियें, न भ्रमण, न व्यसन, न व्यवहार और न वार्तालाप, सब के सब बन्द रहें, यह समय केवल परमात्मा के स्मरण का समय है, और इस कार्य के लिये इस को खर्च करना चाहिये। इन समयों को नियत करते हुए ऋषियों ने बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से काम लिया है, प्रथम तो यह काल ही ऐसे हैं, कि इन में स्वाभाविक रीति से मन शान्त होता है, प्रकृति का आश्चर्य रूप अद्भुत दृश्य हमारी आंखों के सामने आकर स्वयं ही बहुरङ्गी परमात्मा से मिलने की इच्छा उत्पन्न कर देता है, और द्वितीय इस नियत समय को जांचने के लिए धनी और दरिद्री, राजा और कङ्गाल सब को एक जैसी आसानी है। घड़ियों और क्लाकों के खरीदने की ज़रूरत नहीं है, हरएक शख्स चाहे वह कैसा ही ग़रीब क्यों न हो, अगर उस के अन्दर भाव हैं, तो समय पर अपने मालिक को याद कर सकता है। समय की नियती भी एक ज़रूरी बात है, हमारी जिन्दगी में एक समय के लिए एक आवश्यक काम होना चाहिये, और हर एक आवश्यक काम के लिए कोई समय नियत होना चाहिये, नियत समय पर जो काम हो, वह दिल से किया जा सकता है, और उस को करने की ख्वाहिश खुद बखुद दिल में पैदा हो जाती है। जिस तरह से भोजन का समय सदा के लिए नियत करने से निश्चित समय पर भूख लग आती है, और दिल भी चाहता है, कि भोजन करें इसी तरह नियत समय के होने से सन्ध्या करने के लिए भी खुद बखुद इच्छा हमारे मन में होगी और अगर इन समयों को नियत न करें, तो प्रमाद का भय रहेगा और हम अपने व्रत से पतित हो जावेंगे। इस लिए उपासक के वास्ते आवश्यक है, कि

वह समय का ख्याल रक्खे और नियत समय पर सन्ध्या करने की चेष्टा करे। जिस दिन नियत समय पर किसी विशेष कारण से ईश्वर स्मरण न कर सके, उस दिन को अपनी हानि का कारण समझे और इस हानि को न्यून करने के लिए दूसरे समय पर सन्ध्या बन्दन करे, परन्तु ऐसा कभी न हो, कि दिन और रात परमात्मा का नाम लेने के बगै़र ही गुज़र जावें। इस विषय पर प्रमाद करने से बड़ा पाप होता है। सन्ध्या का स्थान निर्जन होना चाहिये। अच्छा तो यह है, कि प्रातःकाल ही उठ कर हम किसी नदी के किनारे चले जावें, आवश्यक कृत से फारिग हो कर वहां के किसी शुद्ध स्थल पर जहां स्त्री पुरुषों की आवाज़ें हम तक न पहुंचें, सन्ध्या के लिए अपना आसन जमालें और सन्ध्या के समय को परमात्मा के स्मरण में खर्च करें, वहां पर शुद्ध जल के सन्मुख जंगल की जल संकीर्ण प्राणशक्ति वर्धक, सुगन्धित निर्मल वायु के पान से हमारे शरीर में आरोग्यता और आत्मा में पुरुषार्थ पैदा होगा। परन्तु काल के प्रभाव से लोगों के अन्दर सर्दी और गर्मी के सहन की शक्ति न्यून होने से और नदियों के किनारों पर राज्य की अथवा श्रीमानों की तवज्जा के अभाव से युक्त साधन न होने के कारण नदियों के किनारों पर प्रायः वह निर्जनता नहीं होती, जिस के बिना ध्यान का लगना बड़ा कठिन है। इस लिए यदि यह साधन उपलब्ध नहीं हैं, तो अपने घरों में अथवा समाज के मन्दिरों में या किसी ऐसे स्थान पर जहां शान्ति विद्यमान हो, अपने इस नित्य कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये, परन्तु ध्यान रहे, किसी अच्छे स्थान के अभाव में यह बेहतर है, कि सन्ध्या को बुरे स्थान में बैठकर कर लिया जावे, बजाय इस के नागा कर लिया जावे क्योंकि नित्यकर्म करना श्वास और प्रश्वास के समान है, और जिस तरह से वह बन्द नहीं हो सकते इसी तरह से नित्यकर्म में

भी त्याग नहीं हो सकता ।

निर्जन स्थान में युक्त समय पर सन्ध्या करने के लिए जब हम बैठेंगे, तब हमें अनुभव होगा, कि हम एक कठिन कार्य में प्रवृत्त हुए हैं, हमारे अन्दर प्रेम और सद्भाव के अंकुर मौजूद हैं, परन्तु जो हमारे अपने आत्मपुत्र हमसे जन्म लेने वाले मन के अन्दर असुर विराजमान हैं, वह इन दिव्य शक्तियों को छिन्न भिन्न कर उन की जगह अपना बल स्थापन करने के लिए उद्यत है, हम प्रेम अपने अन्दर देखना चाहते हैं उसकी जगह राग और द्वेष के दूत दर्शन देते हैं, हम शान्ति के हितेषु हैं, और क्रोध का भङ्कर रूप हमारे सामने आ खड़ा होता है, हम धर्म की याचना करते हैं, उसकी बजाय काम और उसके विषय मोहिनी स्वरूप धारण करके हमारे मन को आकर्षित कर ले जाते हैं यहां तक कि परमात्मा, परलोक, पुनर्जन्म, और मोक्ष पर संशय उत्पन्न होकर हृदय को घेर लेते हैं, और दिल में आता है कि सन्ध्या प्रार्थना और उपासना के सारे बखेड़े को लपेट कर आनन्द लाभ करें, और साथ ही इतने में यह विचार उत्पन्न होता है कि आनन्द कहां ? आनन्दपद को छोड़ कर राग, द्वेष, काम, क्रोध और विषयों की सेना के अन्दर रह कर किस ने सुख और शान्ति को लाभ किया है ? यह राक्षस तो सुख और शान्ति के शत्रु हैं न कि उनके दान करने वाले, जिन ऋषियों महर्षियों और महात्माओं ने श्रेयस का मार्ग लिया है उन्होंने तो इन दैत्यों के साथ युद्ध किया है, न कि इनके साथ सन्धि गांठी है । फिर सुख और शान्ति भी क्या तुच्छ पदार्थ हैं उस महान् कर्त्तव्य के सामने जो हमारा वेद-कर्त्ता जगत्-विधाता परमात्मा की ओर है ? वह तो हमारे पिता हैं, उन्हों ने हमें जन्म दिया वह हमारी माता हैं, क्योंकि उन के प्रेम की दृष्टि दिन और रात हमारी रक्षा करती है, वह तो हमारे भ्राता हैं, उन ही के भुजाबल

से हम इस संसार के संग्राम में विजय प्राप्त करते हैं, नहीं २ वह हमारे सखा हैं, हमारी रक्षा हमारी तुष्टि और हमारी जिन्दगी में प्रेम और आनन्द और स्नेह का मिठास प्रदान करते हैं, मित्र का स्वरूप धारण किए हुए सदा ही हमारे शरीर रूपी रथ के नेता बने हुए अङ्ग-सङ्ग वर्त्तमान हैं। बाहर की सृष्टि की तरफ़ जब हम दृष्टि डालते हैं, तो प्रतीत होता है कि यह हमारे इष्ट मित्र इस लोक के एक मात्र पति और इस पृथ्वी और द्यौ के एक मात्र सहारा हैं। उन्होंने असंख्यात सूर्य मण्डलों को उत्पन्न करके अपने २ पैरों पर कायम रखा है। वह उस सारे ब्रह्माण्ड के पति राजा और शासन कर्त्ता हैं, न वहां तक सूर्य की पहुंच है, न चांद और सितारों की गति है अग्नि की तो मजाल ही क्या है, कि वहां तक देख भी सके। हम निर्बल जीवात्मा ऐसे अनन्त और सर्वशक्तिमान सम्राट् के राज्य में वास करते हुए सब प्रकार के आनन्द सुख भोगते हैं, क्या हमारा यह कर्त्तव्य नहीं कि हम अपने राजा की महिमा का चिन्तन कर अपने मालिक के गुणों को गावें और अपने माता-पिता और मित्र से मिलने की चिन्ता करें, धिक्कार है हमारे जीवन पर अगर हम परमात्मा के चरणों में बैठने का यत्न न करें।

हमारे जैसा कौन सा कृतघ्न होगा अगर हम उस को भूल जावें जो स्वास प्रस्वास में हमें याद रखता है। इस विचार से बलवान होकर आत्मा का आलस्य दूर हो जाता है, मन की निर्बलता भाग जाती है राक्षस और दैत्य भी कुछ समय के लिये परे हो जाते हैं, हृदय में शान्ति और उत्साह विराजमान होते हैं। अब प्राणायाम करो, और भी चित्त निर्मल होगा, इस प्राप्त भूमि को स्थिर रखने के लिये बार २ प्रयत्न करो, यह ही अभ्यास है इस चित्त की सफाई और परमात्मा के योग के मुकाबले में, विषयों के सुखों को तुच्छ समझो, यही वैराग है इन दोनों साधनों से अपने

अन्दर और बल ग्रहण करो और प्रभु परमात्मा की अनन्य भक्ति के योग्य बनो । इस प्रकार चित्त को रिक्त और निर्मल करना परमात्मा के पूजन की विधि है । वह संसार के पुष्प और जल, धन और दौलत के ख्वाहिशमंद नहीं हैं, दुनियां के बाहर के आडम्बर उनको प्रसन्न नहीं कर सकते, उनकी सच्ची प्रसन्नता तो उस पर है, जो अपने हृदय को एक छोटे बालक के समान शुद्ध और निर्मल बनाकर केवल उन्हीं पर आसरा करता हुआ उनके चरणों में विराजमान होता है, इस लिये सब आडम्बरों को छोड़ दो और केवल चित्त की सरलता और प्रसाद के पुष्प लेकर इस प्रभु पूजा में प्रवृत्त होओ, जो कुछ दिल में हो, वह निर्भय हो कर कहो और फिर सब कुछ उनकी मर्ज़ी पर छोड़ दो, वह ज़रूर हम को सुनेंगे और अपनी ज्योति से हमरा पथ पदर्शन करेंगे ।

सन्ध्या स्वयं एक शस्त्र है, और बड़ा शस्त्र है । जैसे सूर्य की रश्मियों से रात्रि को सेनायें स्वयं ही छिन्न-भिन्न हो जाती हैं उसी तरह से पाप के दल इस शस्त्र के सामने नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं । इन मन्त्रों की अद्भुत शक्ति है इनके अर्थों पर विचार करने से जीवन के आदर्श उच्च हो जाते हैं, आत्मा की शक्तियां महान् बन जाती हैं, पाप की रुचि कम हो जाती है ईश्वर में प्रेम बढ़ता है और सच्ची रहनुमाई ज़िन्दगी होती है । सन्ध्या को सुफल करने के लिए इन सब चीज़ों की ज़रूरत है, मगर यह सब चीज़ें भी सन्ध्या से पैदा होती हैं, इन पदार्थों से बढ़ कर जीवात्मा परमात्मा के दर्शन करके अमृत बनता है, और पाप के बन्धनों को तोड़ कर मोक्षधाम को प्राप्त होता है । शतपथ ब्राह्मण में लिखा है, कि इस सारी पृथ्वी को धन से भर कर दान देने से जो फल प्राप्त होता है, इससे तिगुना या इस से भी बढ़ कर या अनन्त फल उस को प्राप्त होता है, जो ठीक २ जानता हुआ हर रोज़ स्वाध्याय करता

है, इस लिए स्वाध्याय करना चाहिये। दूसरी जगह पर भी वही ऋषि फरमाते हैं, इस पृथ्वी और द्यौ में जितने मिहनत के काम हैं उन की परम काष्ठा स्वाध्याय है, उस शख्स के लिए जो समझ कर स्वाध्याय करता है, इस लिए स्वाध्याय अच्छी तरह करना चाहिये।

मेरे प्यारे भाइयो! इस परम शस्त्र को धारण करो, अपने आत्मा के बैरियों से युद्ध करके अपने आत्मा के अन्दर सुख और शान्ति का राज्य करो, इस परम औषधि की कृपा से आप के मल दूर होंगे और आप का चित्त निर्मल होगा, चित्त के प्रसाद से आप परमात्मा के दर्शन योग्य बनोगे और आप को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि प्राप्त होगी।

हंसराज

ॐ

१

मन्त्रारम्भः—आचमन मन्त्रः

ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयो रभिस्रवन्तु नः॥ यजुर्वेद अ० ३६। मं० १२॥

निर्जन स्थान ओर शुद्ध आसन पर बैठकर जब हम ऋषियों की पद्धति के अनुसार परमात्मा का पूजन प्रारम्भ करते हैं तो सब से प्रथम जिस मन्त्र को हम पढ़ते हैं, वह यह है और इस मन्त्र के पदार्थ के साथ हम तीन आचमन किया करते हैं [१] आचमन के कई प्रयोजन हैं, एक तो यह कि आचमन पावक है, इस के द्वारा हम सांसारिक और पारमार्थिक में भेद करते हैं। सांसारिक धन्धों में फंसे हुए हम जब किसी परमार्थ के काम को करने लगते हैं तो इन दोनों अवस्थाओं को अलग करने के लिए आचमन के द्वारा ऐसी रेखा खींची जाता है, ताकि उपासक यह समझे कि मैं अब संसार के द्वन्द्व और कलह से निकल कर शान्ति धाम की हद्दों में प्रवेश करने लगा हूं, इस ही उद्देश्य से हर एक यज्ञ और पवित्र कर्म के आरम्भ में आचमन की आज्ञा दी गई है। द्वितीय यह कि आचमन के द्वारा कण्ठस्थ कफ और पित्त की निवृत्ति होती है, गला साफ हो जाता है और प्राणायाम आदि क्रियाओं का करना सुगम हो जाता है, और सन्ध्या के करने में इन दोनों दोषों के द्वारा

१ आचमन इस तरह किया जाता है, कि हाथ की हथेली पर कुछ जल गिरा कर ओष्टों द्वारा इस तरह से पिया आए कि वह गले से ज़ियादा नीचे न उतरे।

विघ्न नहीं होता। तृतीय यह कि इस धर्म-क्रिया को करते हुए आचमन हमारे स्वास्थ्य को भी उन्नत करता है, इसीलिए भगवान मनु आदि ने भोजन के आरम्भ और अन्त में इस की आज्ञा दी है।

जो जल हमारे अन्दर जाता है, वह हमारी पाचन शक्ति को बढ़ाकर दीर्घ आयु प्रदान करता है और ऋषियों के नियत नियमों का यह फल है कि इस से लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रयोजन सिद्ध होते हैं, इसी तरह से आचमन हम को स्वास्थ्य और दीर्घ आयु प्रदान करता हुआ हमारा मन परमात्मा के चरणों में ले जाने के लिये प्रस्तुत करता है। इन कारणों से आचमन करना आवश्यक है, परन्तु जैसा तत्त्वदर्शी श्री स्वामी दयानन्द जी ने लिखा है :—

यदि जल न हो तो आचमन न करे, परन्तु सन्ध्या से प्रमाद न करे क्योंकि सन्ध्या मुख्य है, और आचमन आदि क्रियायें गौण हैं, यह सन्ध्या में सहायता देने के लिए नियत की गई हैं, तो यदि मुख्य कर्म को छोड़ दिया जावे इसलिए कि गौण कर्म के साधन मौजूद नहीं थे तो यह हमारी मूर्खता है ॥

इस आचमन मन्त्र में हम परमात्मा से प्रार्थना करते हैं, कि हे भगवन ! आप दिव्य स्वरूप हैं, सर्वव्यापक हैं, आप हमारे कल्याण और पूर्त्ति के लिए शान्ति देने वाले हैं, आप शान्ति की वृष्टि हम पर सर्व ओर से करें।

इस मन्त्र का यह अर्थ हो सकता है, हे परमात्मन् ! आप की कृपा से दिव्य जल (जिन से हम आचमन करते हैं) हमारे कल्याण और पूर्ति के लिये हम को शान्ति देने वाले हों, और शान्ति की वृष्टि हम पर सब ओर से करें। परमात्मन् आप दिव्य स्वरूप हैं, स्वयं प्रकाशमान् हैं, और सूर्य, चन्द्रमा, तारागण आदि

अन्य दिव्य पदार्थों को प्रकाश देते हैं। यह सब अपना प्रकाश नहीं रखते, प्रत्युत आप के दिए हुए प्रकाश से प्रकाशमान् हैं, जहां प्रकाश है वहां अन्धकार और पाप नहीं, चूंकि वह सर्वव्यापक है, इसलिए कोई स्थान नहीं, जहां परमात्मा की ज्योति विराजमान न हो। इस का जाज्वल्यमान पुण्य स्वरूप राज, हर एक संसार के गुप्त से गुप्त गम्भीर गार में विराजमान है, परन्तु वह पिता केवल तेजस्वी ही नहीं हैं, वह जल के समान शीतल और शान्ति का पुञ्ज हैं, उन के आदेश मात्र से समुद्र की सन्नाटे मारती हुई लहरें और कुपित वायु के भयानक मरुत् एक मिन्ट में शान्ति और सम हो जाते हैं, उस ज्योतिर्मय और मधुर-मुख शान्त पिता के चरणों में हम इस उद्देश्य से जाते हैं, कि इस यज्ञ में किसी प्रकार के भी विघ्न आकर हम को न सतायें। हम परमात्मा पूजन नहीं कर सकते, जब तक कि हमारा मन शान्त न हो, इस शान्ति में विघ्न डालने वाले बहुत से क्षोभ हमारे अन्दर विरजमान हैं। जब हम यज्ञ में पहुंचते हैं, राग, द्वेष, काम और क्रोधादि सब शत्रु हमारे यज्ञ के विध्वंस करने को उद्यत हो जाते हैं। जितने वर्जनीय विचार हैं, बे वेग के साथ हमारे मन के सामने आ मौजूद होते हैं। ताकि परमात्मा-विचार से हट कर हम फिर संसार चक्र में ही फंस जावें, इन राक्षसों को दूर करना बड़ा कठिन काम है, हे परमात्मन्! आप से हमारी प्रार्थना है, कि आप हमारे सहायक बनें, आप की कृपा से इस यज्ञ में हमारा मन ऐसा एकाग्र हो और हमारे चित्त पर शान्ति और धर्म की ऐसी वर्षा हो कि हम बिना विघ्न के आप के चरणों में बैठ कर सुख रूप बोध कर सकें। जहां आप हैं, वहां पाप और अन्धकार नहीं, हम को भी अपने पुण्य और शान्ति में से कुछ प्रदान करें।

आचमन के पश्चात् इन्द्रिय स्पर्श मन्त्र आते हैं वह यह हैं।

२

इन्द्रिय-स्पर्श मन्त्राः

ओ३म् वाक् वाक्। ओ३म् प्राणः प्राणः।
ओ३म् चक्षुः चक्षुः। ओ३म् श्रोत्रम् श्रोत्रम्।
ओ३म् नाभिः। ओ३म् हृदयम्।
ओ३म् कण्ठः। ओ३म् शिरः।
ओ३म् बाहुभ्याम् यशोबलम्।
ओ३म् करतल करपृष्ठे।

हे परमात्मन्! आप मेरी बाणी और बाणी को। हे परमात्मन्! आप मेरे प्राण और प्राण को, आंख और आंख को, कान और कान को, मेरी नाभि, मेरे हृदय, मेरे कण्ठ और मेरे सिर को बल दें। हे परमात्मन्! मेरी बाहों के लिए यश और बल प्राप्त हो, हे परमात्मन्! मेरी हथेली और हाथ की पीठ को बल दें।

इस मन्त्र में भिन्न २ इन्द्रियों का नाम लेकर और परमात्मा के सब से पवित्र नाम ओ३म् को उन के पहिले लिख कर उन से प्रार्थना की गई है, कि वह बलदाता शक्ति स्वरूप जो मनुष्य की इन्द्रिय २ में रमण कर रहे हैं, और वहां स्थित हो कर इस को जीवन और कार्य शक्ति प्रदान करते हैं, वह प्रत्येक इन्द्रिय को बल देकर साधक को कृतार्थ करें, क्योंकि जब तक उस के शरीर में आरोग्यता नहीं होगी और उसकी इन्द्रियों में बल नहीं होगा, तब तक वह परमात्मा की प्राप्ति के साधनों पर भली प्रकार दृढ़

नहीं हो सकता। जितनी हमारी मानसिक और पारमार्थिक क्रियाएं हैं, वह सब की सब स्वस्थ शरीर के आधीन हैं। बीमारी की अवस्था में न स्नान, न सन्ध्या, न ध्यान और न समाधि सम्भव हो सकते हैं, इस लिये महर्षि पातंजलि जी ने अपने योग सूत्रों में व्याधि को योग की ग्यारह रुकावटों में से प्रथम वर्णन किया है। यहां पर यह प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि परमात्मा की प्रार्थना करने से हमारे शरीर के अंग किस तरह पुष्ट हो सकते हैं। इस का उत्तर यह है, कि सच्चे हृदय से जो प्रार्थना उपासक अपने उपास्य से करता है, वह अवश्यमेव सफल होती है यदि उस में किसी दूसरे के साथ राग द्वेष न हो और वह पूर्ण प्रीति के पश्चात् की जावे। यदि हम परमात्मा से प्रार्थना करें, और स्वयं कुछ भी पुरुषार्थ न करें, तो हमारी प्रार्थना एक सच्चे हृदय से नहीं परन्तु एक कपटी आत्मा से उत्पन्न होती है, और वह सर्वथा स्वीकार होने के योग्य नहीं। हृदय की सचाई और लगातार बलवान्-इच्छा शक्ति भी इस संसार को महान् शक्तियों में से है और जब वह शक्ति एक विश्वासी भक्त के हृदय से उत्पन्न हो कर असह्य प्रकृति-मय संसार में विचरण करती है, तो वह प्रकृति के पदार्थों में उसी प्रकार से तबदीलियां पैदा कर सकती है, जिस तरह विद्युत की शक्ति आजकल के विज्ञानियों के हस्तागत हुई २ मनुष्य जाति को अपनी अपूर्वता दिखला रही है। मूर्ख मनुष्य विद्युत शक्ति को देख नहीं सकता, परन्तु जब उस के अपूर्व कर्मों को देखता है, तो चकित रह जाता है। ऐसे ही एक पवित्रात्मा से उत्पन्न दृढ़ मानसिक इच्छा वह परिवर्तन कर सकती है, जो साधारण मनुष्यों को सूझते तक नहीं। इन्द्रिय स्पर्श मन्त्रों के द्वारा हम इस सूक्ष्म शक्ति को अपने शरीर की पुष्टि के लिये बर्त्ताव में लाते हैं, और बलवान् हो कर परमात्मा के प्रयोजनों को इस

संसार में पूर्ण करते हैं, इस के साथ यह भी याद रखना चाहिये, कि अगर हम परमपिता परमात्मा के दरबार में किसी ऐसी प्रार्थना को लेकर जाते है, जिस की सिद्धि के लिये हम अपनी ओर से कुछ भी प्रयत्न नहीं करते तो हम परमात्मा को धोखा देने की चेष्टा करते हैं, और पाप के भागी बनते हैं। इस लिये इस भय से हमने प्रातःकाल और सायंकाल परमात्मा के सामने सीस निवा कर अपने अंगों की पुष्टि के लिये प्रार्थना कर ली है, और अगर हमने शरीर के स्वास्थ्य और पुष्टि के नियमों पर आचरण न किया तो वह हम को धोखाबाज़ समझेंगे। एक सच्चे साधक के लिये आवश्यक है, कि वह आयुर्वेद की आज्ञानुसार अपने शारीरिक जीवन को गुज़ारें वह दिनचर्य्या और रात्रिचर्य्या के नियमों पर भली भांति आचरण करे, और अपने स्वास्थ्य को सदा ऐसा रखे, कि उपासना और समाधि के शत्रु, विघ्न उसके पास फटकने न पावें और वह इन विघ्नों के अग्रगामी व्याधि विघ्न को सदा ही अपने से परे रख सकें।

इस शरीर के भिन्न-भिन्न अङ्गों का नाम लेते हुए हम को चिन्तन करना है, कि सर्वव्यापक **ओ३म्** इन अङ्गों के अधिष्ठाता बन कर इनको परिचालन कर रहे हैं। क्योंकि जब तक आत्मा के अन्दर विश्वास उत्पन्न नहीं होता, तब तक हमारे शरीर के अङ्ग हमें मुक्ति पथ पर ले जाने के लिए असमर्थ होते हैं।

इन्द्रिय स्पर्श मन्त्र के पश्चात् मार्जन मन्त्र आता है वह यह है।

३

मार्जन मंत्राः

ओ३म् भूः पुनातु शिरसि ।
ओ३म् भुवः पुनातु नेत्रयोः ।
ओ३म् स्वः पुनातु कण्ठे ।
ओ३म् महः पुनातु हृदये ।
ओ३म् जनः पुनातु नाभ्याम्।
ओ३म् तपः पुनातु पादयोः ।
ओ३म् सत्यंपुनातु पुनश्शिरसि ।
ओ३म् खंब्रह्म पुनातु सर्वत्र ।

यह माना कि हमारा शरीर पुष्ट है और हमारी इन्द्रियां बलवान हैं, पर उन से क्या लाभ है, यदि हमारा शरीर और हमारी इन्द्रियं धर्म के पथ पर चलने वाली न हों, बल्कि उन से ज्यादा हानि की सम्भावना है, क्योंकि जिस पुरुष की शक्तियां अधिक हैं, वह पाप भी अधिक कर सकता है, बनिस्बत उस शखस के जो कि निर्बल और न्यून शक्तियों वाला हो ।

शक्ति एक तलवार के समान है, जो मित्र और शत्रु दोनों को काट सकती है, जब तक इस का योग्य प्रयोग न किया जावे, कोई शक्ति शुभ फल प्रदान नहीं कर सकती, इसलिए बल के वास्ते प्रार्थना करने के पीछे मार्जन मन्त्रों के द्वारा परमात्मा से प्रार्थना करे ।

मार्जन मंत्रों का अर्थ

प्राण रूप परमात्मा हमारे सिर को पवित्र करे। दुःखों के दूर करने वाला परमात्मा आंखों को पवित्र करे। सुख-स्वरूप परमात्मा कण्ठ को पवित्र करे। महान् परमात्मा हृदय को पवित्र करे। सब को उत्पन्न करने वाला परमात्मा नाभि को पवित्र करे। दुष्टों को दण्ड देने वाला परमात्मा पांव को पवित्र करे। अविनाशी परमात्मा फिर सिर को पवित्र करे। सर्वव्यापक ब्रह्म सब स्थानों में पवित्रता करे।

इन मन्त्रों का नाम मार्जन मन्त्र इसलिये है, कि इन के द्वारा मनुष्य की शक्तियां निर्मल और पवित्र की जाती हैं, मार्जन का अर्थ मलना और साफ करना है, जिस तरह से एक बर्तन को मल कर उस का मैल दूर करके उस को शुद्ध और पवित्र कर लेते हैं। इस तरह इन मन्त्रों के द्वारा इन्द्रियों के दोष दूर करके इन को पुण्यमय और निर्मल बना लेते हैं। दिन को अथवा रात्रि को जो पाप हम करते हैं, इस से हमारे चित्त पर मलीन संस्कार पड़ जाते हैं, कुछ समय तक तो वह मलीनता प्रतीत नहीं होती, परन्तु कुछ काल के पीछे चित्त पाप से काला हो जाता है, और उस की पवित्रता और निर्मलता नष्ट हो जाती है, जैसे दर्पण पर गर्दा पड़ने से कुछ काल तक तो उसकी चमक बनी रहती है, परन्तु चिरकाल के पीछे वह गर्द से इतना मैला हो जाता है, कि उस में अपने मुख को नहीं देख सकते। दर्पण में मुख दर्शन के लिये आवश्यक है, कि उस के गर्द को हर रोज़ झाड़ा जावे, इसी प्रकार चित्त के दर्पण पर से पाप के मल को हर रोज़ झाड़ कर उस को शुद्ध और पवित्र रखना चाहिये। यह तब ही हो सकता है जब प्रति-दिन प्रातः और सायङ्काल हम हर एक इन्द्रिय के पुण्य और पाप

को विचार कर परमात्मा से प्रार्थना करें कि वह हमारे पापों को दूर करे। पाप की शक्ति इतनी महान् है कि परमात्मा की सहायता के बिना उससे बचना अति कठिन है, इसलिए साधक अपने सिर को कुशा से छू कर अथवा उस को ध्यान में रख कर परमात्मा से प्रार्थना करता है, कि हे प्रभु आप प्राणों के प्राण हैं, जीवन के दाता हैं, पाप को दलन करने की शक्ति प्रदान करने वाले हैं, आप की कृपा से मेरे सिर में सदा पवित्र विचार और शुभ संकल्प उत्पन्न हों। आदमी ख्यालात का पुतला है, जिस किसम के इस के ख्यालात होते हैं, उसी किसम का वह बन जाता है, इस लिये परमात्मा से प्रार्थना करता है, कि कोई दुश्चेष्टा उस के दिमाग़ में पैदा न हो। बुरे ख्याल हमारी सन्तान हैं और जैसे बुरी सन्तान अपने पिता के लिये दुःख का कारण बनती है, वैसे ही दुष्ट चिन्तायें हमारे लिये दुःख के साधन उत्पन्न करेंगी, इस लिये प्राण रूप परमात्मा से यही प्रार्थना है कि हमारे संकल्प शिव और शुभ हों। हे दुःखों के नष्ट करने वाले परमात्मा आप हमारी आंखों को पवित्र करें, इन आंखों के द्वारा हम सदा वेदों का पाठ करें। बहुत शास्त्रों को पढ़ें, यह आंखें कभी धर्म विरुद्ध और पाप जनक पुस्तकों के पाठ अथवा पराई स्त्रियों के दर्शन में न लगें, इन के द्वारा हम किसी पर क्रोध दृष्टि न करें, सदा प्रेम का भाव इन से प्रकाशित हो, इन की सहायता से इन अन्धों और मुसाफरों को सीधे रास्ते पर डालें। हे परमात्मा आप की कृपा से हमारे कानों में सदा मधुर और पवित्र शब्द पड़ते रहें, गन्दे गीत और दुष्ट वचन कभी भी हमारे कर्णगोचर हो कर कभी भी हमारी आत्मा के संस्कारों को भ्रष्ट न करें। हे दयामय ! महान् जगदीश आप सब से बड़े हैं, न कोई आप, के तुल्य और न कोई आप से अधिक है, आप मुझ पापी के हृदय को भी महान् बनावें, तुच्छता

और नीचता के अंकुर इस हृदय भूमि में कभी उत्पन्न न होवें, सुख हो अथवा दुःख हो, धनाढ्य रहें व निर्धन मित्रों से घिरे हुए रहें अथवा अकेले रहें हमारा हृदय सर्वथा विशाल रहे। आप सदा हमारे हृदय सिंहासन पर विराजमान रहें। हे सर्व जगत उत्पादक हम अपनी नाभि से अपने पांव से, कोई पाप कर्म न करें। हमारे शरीर का अङ्ग २ पुण्य और धर्म का वर्धक हो, उस के द्वारा कभी भी पाप को सहारा न मिले। इस प्रकार ईश्वर प्रभु से प्रार्थना करता हुआ अपने पापों पर विचार करें और उन पर पश्चाताप प्रकट करता हुआ हृदय में दृढ़ निश्चय करे कि मैं अब पापों को फिर कभी नहीं करूंगा, इसी का नाम आत्म-समीक्षा है और इन मन्त्रों में आत्म-समीक्षा का उपदेश है। आत्म-समीक्षा से ही ऋषि, मुनि और यति परमात्मा के चरणों को प्राप्त हुए हैं।

कई लोगों का विचार है कि इन्द्रियां पाप का मूल हैं इन को नष्ट कर देना ही हमारी धार्मिक उन्नति का उपाय है, इस विचार में इतना सत्य तो है कि पाप के अन्दर प्रवृत्त हुईं २ इन्द्रियों की अपेक्षा इनका नष्ट कर देना अच्छा है। यह अच्छा है कि हम विचार से शून्य हों बनिस्बत इस के कि हम अपने विचारों से दूसरों की हानि करें। निर्दोषों को दलन करने वाले हाथ की निस्बत हाथ के बिना ही रहना श्रेष्ठ है। बेहतर है कि हमारी दर्शन शक्ति और हमारी श्रवण शक्ति नष्ट हो जावे, बजाय इस के कि हम अपनी मैली आंखों से परस्त्री को देखें, और कानों से असत्य वचनों को सुनें, परन्तु वैदिकधर्म का उपदेश है कि हम को अपनी इन्द्रियां केवल पाप से परे ही नहीं रखनी चाहिये, प्रत्युत उन को पुण्य में प्रयोग करना चाहिये, परमात्मा ने यह अपूर्व शक्तियें हम को केवल इस लिये नहीं दीं, कि हम उन से कोई पाप न करें, बल्कि इस लिये प्रदान की हैं कि उन से पुण्य का उपार्जन हो।

बुरे रास्ते से बचना ही धर्म नहीं है बल्कि अच्छे रास्ते पर चलना धर्म का उत्कृष्ट भाव है। इसी कारण इन मार्जन मन्त्रों में साधक परमात्मा से पाप की निवृत्ति और धर्म्म के उपार्जन के लिये प्रार्थना करता है।

४

प्राणायाम मन्त्राः

आप के सामने मैं सन्ध्या के तीन मन्त्रों की अर्थात् आचमन मन्त्र, इन्द्रिय स्पर्श मन्त्र, और मार्जन मन्त्र की व्याख्या कर चुका हूं, चौथा मन्त्र प्राणायाम है। अगर आज से दस या पन्द्रह वर्ष पहिले कोई आदमी प्राणायाम का ज़िकर करता और यह कहता कि प्राणायाम लाभकारी है, इस को करना चाहिये, तो शायद ही कोई आदमी और वह भी ऐसा जो शास्त्रों का पढ़ने वाला हो, उस को सुनता, मगर आज कल सारे पढ़े लिखे आदमी यहां तक कि विदेशी भी प्राणायाम की महिमा को स्वीकार करते जाते हैं। अभी थोड़े दिन हुए, प्रोफैसर राममूर्त्ति ने अपने लैकचरों में वर्णन किया था, कि जिसमानी लिहाज़ से उन की वृद्धि प्राणायाम से ही हुई है, इस से शरीर में बल और बुद्धि पैदा होते हैं, प्राणायाम हमारे लिये बहुत आवश्यक चीज़ है। इस की एक दलील यह है कि हमारे जो फेफड़े हैं जिन से हम सांस लेते हैं उन में बहुत सी नसें हैं जिनके अन्दर खून बहता है। जिस समय हम सांस अन्दर को खींचते है तो हमारे अन्दर हवा जाती है, हवा आकसीजन और नाइट्रोजन की बनी हुई है। आक्सीजन जब किसी पदार्थ के साथ मिलती है तो यह उस को जला देती है, हमारे शरीर में जितने मल हैं, जब वह हमारे फेफड़े की तह तक पहुंचते हैं तो वहां जमा (एकत्र) हो जाते हैं, जब हम सांस लेते हैं, तो शुद्ध हवा जो हमारे अन्दर जाती है इन मलों को छिन्न भिन्न कर देती है, और यह

एक और गैस (कारबानिक एसिड गैस) की सूरत में बदल कर बाहर निकल जाते हैं, यह गैस इतनी गन्दी और ज़हरीली है कि यदि आदमी इस में रहे तो अपनी ही उत्पन्न की हुई गन्दी वायु से दम घुट कर नष्ट हो जाता है। अगर एक अच्छे भले चूहे को किसी शीशे के मर्तबान में बन्द कर दिया जावे, तो थोड़े ही अरसे में विष युक्त हवा के असर से उसका दम घुटने लग जायगा और वह तड़फ २ कर मर जायगा।

आक्सीजन का यह कर्तव्य है कि यह उस मल को जो हमारे फेफड़ों की तह पर आ जाती है दग्ध कर देता है॥

इसी के काफी मिकदार (परिमाण) में अन्दर लेने के लिये लोगों ने कई प्रकार के व्यायाम नियत किये हैं। व्यायाम का यह ही कर्तव्य है कि प्राण वायु हमारे फेफड़ों तक जावे, और उन मलों को नष्ट कर दे। कई लोग केवल सांस के व्यायाम ही जिन को (**Breathing exercises**) कहते हैं करते हैं उनका प्रयोजन भी यही है कि इस की सहायता से सब मलों को नष्ट कर दिया जावे, और फेफड़े के हर एक कोने की सतह तक वायु पहुंचे।

व्यायाम करते समय कई लोग मुंह के ज़रिये सांस लेतें हैं, वह बड़ी भूल करते हैं, क्योंकि वह इस तरह से अपने अन्दर कई प्रकार की बीमारियां उत्पन्न कर लेते हैं। मुंह द्वारा सांस लेने से गहरा सांस (**Deep Breathing**) नहीं होता और इस लिये हमारे फेफड़ों के कई भाग तो साफ हो जाते हैं और कई शुद्ध नहीं होते, हवा उन तक जाती नहीं, आप समझें कि जिस तरह हमारे घर में कोई नाली है, गन्दी रहने के कारण कई बीमारियां उत्पन्न करती है, इसी प्रकार हमारे शरीर में फेफड़े हैं जो गन्दे रहने के कारण कई बीमारियां उत्पन्न करते हैं। शरीर में जब कोई मल एकत्र हो जाता है, तो वह बीमार कर देता है।

इस वायु में जो कि हमारे आस पास है कई प्रकार के राक्षस रहते हैं। संस्कृत में राक्षस को निशाचर भी लिखा है, और निशाचर उस को कहते हैं, जो अन्धकार में रहे। हमारे आस पास की वायु में कई एक निशाचर घूमते फिरते हैं, सूर्य्य की किरणें इन राक्षसों को नष्ट कर देती हैं, परन्तु जहां धूल वा मिट्टी अधिक हो, और प्रकाश कम रहे, वहां यह निशाचर बहुत रहते हैं, अर्थात् शहर के फाटकों, (दरवाज़ों) गन्दी सड़कों, अन्धेरे और तारीक मकानों में ऐसे जर्म्ज़ (**Germs**) अधिक पाए जाते हैं। मेरे विचार में संस्कृत में निशाचरों से इन्हीं जर्म्ज़ का प्रयोजन है।

एक आदमी तपेदिक (क्षयी रोग) से पीड़ित हैं। वह थूकता है, हम इस बात को समझते हैं कि उसका घर में थूकना सखत नुकसानदेह (हानिकारक) है, वह दीवार पर थूकता है, फर्श पर थूकता है, वह सहिन पर थूकता है, गरज़ कि जहां पाता है, थूक देता है, उसकी थूक में ऐसे जर्म्ज़ (परमाणु) हैं जो वहां से निकल कर हवा में घूमने लग जाते हैं। आपने हस्पताल में या और सरकारी मकानों में लिखा हुआ देखा होगा कि यहां थूकने की आज्ञा नहीं है, परन्तु फिर भी हम दीवारों पर थूकने से परहेज़ नहीं करते।

थूक के निशाचर हवा में घूमने लगते हैं, और वह सांस द्वारा हमारे भीतर आकर हमें बीमार कर देते हैं।

जिस घर में एक दफा तपेदिक आ जावे, वह वहां पर सदैव के लिये डेरा जमा लेता है। एक पण्डित जी ने मुझे बताया, कि उन के घर में तपेदिक की बीमारी से ही तीन आदमी एक दूसरे के बाद लगातार मर गये। जब तङ्ग आकर उन्होंने एक वैद्य को बुलाया तो वैद्य साहिब ने इलाज का यह तरीका किया, हुक्म

दिया सारे घर की सिताह् को उपलों की आग से शुद्ध किया जावे। चुनांचे सारे फर्श पर और दो २ फुट दीवारों पर भी खूब उपलों की अग्नि दी गई, जिस से थूक आदि मल जितना फर्श और दीवारों पर एकत्र था, ज़ल गया। उस के बाद फिर तपेदिक का कोई हादशा (घटना) उन के घर नहीं हुआ। ठीक इसी तरह फेफड़ों का हाल है, जब जर्मंज़ (परमाणु) इस के अन्दर जाते हैं, तो उस जगह आबाद हो कर अपनी बस्तियां बना लेते हैं, और इस तरह तपेदिकादि कई बीमारियों को उत्पन्न करते हैं।

प्राणायाम द्वारा हम पहिले गन्दी हवा को ज़ोर से बाहर निकाल देते हैं, फिर शुद्ध वायु शनैः २ भीतर ले जाते हैं, शास्त्रों में लिखा है कि सन्ध्या ऐसे स्थान पर की जावे, ज़हां जल बह रहा हो, जहां वायु शुद्ध हो और स्थान पवित्र हो। मेरा यह विश्वास है, कि जो आदमी प्राणायाम की विधि करता है, वह कभी भी तपेदिक से बीमार नहीं होता, अगर कभी कोई परमाणु उस के भीतर चला भी जाये तो वह परमाणु शीघ्र ही नष्ट हो ज़ाता है। मनु० अ० ६। ७१ का श्लोक है कि :—

दह्यन्ते ध्यायमानानां धातुनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥

अर्थात्—जिस प्रकार आग में तपाने से सोना आदि धातु साफ हो जाती है, और उनके मल नष्ट हो जाते हैं, ठीक वैसे ही प्राणायाम करने से मन आदि इन्द्रियों के दोष नष्ट हो जाते हैं, और वह निर्मल हो जाते हैं। एक बात जो मैं खास तौर पर वर्णन करना चाहता हूं, वह यह है कि कभी २ लोग नावाकफियत से (अज्ञानता के कारण) ज़ोर के साथ प्राणायाम करना आरम्भ कर देते हैं इस से उन के खून (रक्त) की नाली के फट जाने का

डर है, जिस से आदमी पागल भी हो जाता है। प्राणायाम को हरगिज़ नहीं करना चाहिये, जब तक किसी गुरु से न सीखा जावे, ज़ोर से इसे कभी भी नहीं करना चाहिये।

यदि यह केवल हमारे मल को ही दूर करता, और हम को बीमारियों से ही बचाता है, तो भी यह बहुत अच्छा था, परन्तु हमारे ऋषि इस का एक और भी उच्च प्रयोजन बतलाते हैं। इस से हमारा मन स्थिर और शान्त हो जाता है, आप इस को आज़मा लें। आप यदि प्राणायाम के बाद सन्ध्या करते हैं, तो आप को ओ३म् के जाप का कुछ और ही आनन्द आता है, परन्तु न करने से चित्त एकाग्र नहीं होता। ऋषि कहते हैं, कि मन का सांस से सम्बन्ध है, जब तक सांस को बाकायदा न किया जावे, तब तक मन स्थिर नहीं रहता। जब हम तेज़ी (वेग) के साथ दौड़ रहे हों, तो हम किसी बात को सोच नहीं सकते, मन के स्थिर होने के लिये सांस का बाकायाद होना जरूरी है। प्राणायाम मन को शान्त करता है, और हमारे वश में लाता है। इस लिये पेशतर इस के कि हम परमात्मा का चिन्तन करें, हमें पहिले मन को शान्त रखने का साधन भी आना चाहिये, प्राणायाम से हम को बल भी मिलता है।

हां, प्राणायाम किस समय करना चाहिये ?

इसके मुतल्लक मैं कहना चाहता हूं, कि प्राणायाम करने का उत्तम समय प्रातःकाल और सायंकाल है, इस समय पेट खाली (रिक्त) होता है, भरे पेट जब कि अभी रोटी खाई हो प्राणायाम नहीं करना चाहिये, रोटी खा चुकने के बाद प्राणायाम करने से कय हो जाती है, और सेहत बिगड़ जाती है।

प्राणायाम का मन्त्र यह है :—

ओ३म् भूः। ओ३म् भुवः। ओ३म् स्वः। ओ३म् महः। ओ३म् जनः। ओ३म् तपः। ओ३म् सत्यम्॥

अर्थात्—वह परमात्मा प्राण रूप है, वह परमात्मा दुःखों के दूर करने वाला है, वह परमात्मा सुखों के देने वाला है, वह सब से बड़ा है, वह ही सृष्टि का कर्ता है, वह परमात्मा दुष्टों को दण्ड देने वाला है, वह अविनाशी है। यह परमात्मा के सात नाम हम प्राणायाम के समय लेते हैं, इस को न्यून से न्यून तीन बार करना चाहिये, यदि अधिक बल हो तो अधिक बार।

अब चित्त को शान्त, स्थिर करके जो भक्त है, जो परमात्मा का प्यारा है, उस के सामने एक बड़ा प्रश्न यह होता है, और यह प्रश्न प्रत्येक धार्मिक मनुष्य के सामने रहेगा।

हम अपने आत्मिक जीवन में एक संग्राम पाते हैं। हम चाहते हैं, कि हम शुभ चिन्तन करें, परन्तु हमारे में अशुभ चिन्तन भी आ जाते हैं। हम चाहते हैं, कि नेक हों, शास्त्र का पाठ करें, और शुभ कर्मों में लगें। अलगर्ज़ जितने धर्म कार्य हैं, हम उनको करना चाहते हैं, परन्तु वह आसानी (सुगमता) से नहीं होते, हर एक समय पर हम को अपने मन के साथ लड़ाई झगड़ा करना पड़ता है, ताकि हम अपनी इखलाकी ज़िन्दगी को कायम (स्थिर) रख सकें, सब आदमियों ने पाप की शक्ति को बलवान् महसूस किया है, उन्होंने परमात्मा से प्रार्थना की है, कि वह उनको पाप से बचावें, नानकदेव जी ने भी ऐसी ही प्रार्थना की है। लूथर का विचार था कि कि परमात्मा से बहकाने वाली एक शक्ति है, जिस को शैतान कहते हैं, लूथर ने प्रार्थना करते समय अपने ख्याल के बमूजिब (अनुसार) आवाज़ें (शब्द) सुनीं, इधर देखा, उधर देखा,

अन्त में प्रतीत हुआ कि यह शैतान ही है, जो उसको बहकाना चाहता है। बौद्ध लोग भी यह वर्णन करते हैं, कि उन के गुरु बुद्धदेव का जंग मर नामी राक्षस से हुआ, जब कि बुद्धदेव ने परम ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा की, तो मर ने उन के सामने कई प्रकार के लालच रखे और उनको रोकना चाहा। प्रत्येक महा पुरुष यह कहता है, कि पाप की शक्ति बड़ी प्रबल शक्ति है। सत्यार्थप्रकाश में एक वाक्य आता है, जहां पर स्वामी जी अड़तालीस वर्ष के ब्रह्मचर्य के विषय में कहते हैं, "याद रखना चाहिये कि काम के वेग को रोकना बड़ी कठिन बात है" वह जानते थे, कि यह कठिन है। आत्मिक जीवन में ऐसा झगड़ा सदैव जारी रहता है, क्योंकि पाप से बचने का सवाल (प्रश्न) हर एक धार्मिक आदमी के सामने हर वक्त मौजूद रहता है।

५

अघमर्षण मन्त्राः

प्रणायाम से आगे पांचवां मन्त्र आता है जिस का नाम है अघमर्षण मन्त्र, इस के अर्थ हैं पाप से बचना, हम यह कभी नहीं मानते कि पाप कभी क्षमा भी हो जाते हैं, पर दूसरे मत वालों का ऐसा ही विचार है। आर्यसमाज यह मानता है पाप की सज़ा अवश्य मिलेगी, पापी और पुण्यात्मा में एक भेद है और वह यह कि पापी पाप करता जाता है और पाप के संस्कार को दूर करने का प्रयत्न नहीं करता, परन्तु पुण्यात्मा यदि कभी पाप कर बैठे तो पश्चाताप करता है और आगे के लिये अपने मन को उस पाप के संस्कार से बचाने का प्रयत्न करता है। हमारे हिन्दु भाई यह मानते हैं कि धर्मराज का एक वज़ीर चित्रगुप्त हैं, चित्रगुप्त के अर्थ चित्रकार (मुसव्वर) के हैं। मनुष्य की मृत्यु पर चित्रगुप्त उस के कर्म्मों के नकशे (चित्र) को धर्मराज के आगे रख देता है कि इस ने अमुक पाप किया और अमुक पुण्य, कई शास्त्रों में चित्रगुप्त के अर्थ 'मन' किये जाते हैं, और "आकाश" भी इस को कहते हैं, क्योंकि हमारी प्रत्येक चेष्ट का, हमारे चलने फिरने बोलने का इस आकाश के ऊपर चित्र पड़ जाता है, हमारे मन के ऊपर भी हर एक चीज़ का संस्कार पड़ता है "जान स्टुअर्ट मिल" जो कि इङ्गलिस्तान के एक प्रसिद्ध तत्ववेता (फिलासफर) हो चुके हैं। बड़े धर्मात्मा पुरुष थे, वह किसी के साथ पाप नहीं करते थे, कभी अपशब्द उन की जिह्वा पर नहीं आया था दफ्तर को जाते हुए वह किसी ऐसे कूचे से जाते थे जिस में फाहिशा (व्यभिचारिणी) स्त्रियां रहती थीं वह

स्त्रियां आपस में लडती और गाली गलौच देती थीं। किसी मित्र ने स्टूअर्ट मिल को कहा, कि आप इस गन्दे रास्ते से न आया करें। क्योंकि इस का आप पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। परन्तु मिस्टर मिल नेक दिल (शुद्ध मन) और इरादे के पक्के थे, अपने मन पर उन का काबू था, यह कह कर टाल दिया करते कि यह हो नहीं सकता, कि इस गाली गलौच का मुझ पर कोई प्रभाव पड़ सके, दैवयोग से आठ दस वर्ष के बाद वह बीमार पड़ गये, और बेहोश (मूर्छित) हो गये। इस बेहोशी (अचेतनता) और फरामोशी (विस्मृति) की हालत में जब कि उन का तसल्लुत (प्रभुत्व) उन के दिल और दिमाग पर से उठ गया, उन की जिह्वा से वही गालियां निकलने लगीं, जो कि पापचारिणी स्त्रियों की जिह्वा से उन के कूचे में गुजरते वक्त निकला करती थीं।

होश में रह कर महा पुरुष अपने ख्यालात को दबा सकते हैं, मगर बीमारी आदि में वह अधिक बलवान हो कर बाहिर निकल आते हैं।

हमारी इच्छा हो अथवा न हो, परन्तु हमारे मन पर एक प्रकार का चित्र पड़ता जाता है, पाप का असर होता है, और पुण्य का भी, जो पाप हम करते हैं, उस का दण्ड अवश्य मिलता है। परन्तु यह जरूरी नहीं कि दण्ड उसी समय अवश्य मिल जाये, यदि अब नहीं तो देर के बाद सही, परन्तु मिलेगा जरूर। महात्मा जानता है, कि मेरे आत्मा पर एक बुरा असर पड़ा और वह उसी क्षण से अपने आत्मा की शुद्धि करनी आरम्भ कर देता है, परन्तु पापी नहीं करता।

बुरे असरों से बचने के लिये यह मन्त्र है, स्वामी जी ने इस मन्त्र को पाप से बचने का मन्त्र कहा है, परन्तु यह नहीं कहा

कि यह दण्ड से बचाने वाला मन्त्र है। मनुस्मृति में भी लिखा है, कि जब कोई मनुष्य पाप करे तो अघमर्षण मन्त्र का जाप करना चाहिये। इस का यह अर्थ नहीं कि तुम दण्ड से बच जाओगे, वरंच यह उस संस्कार को दूर करेगा, जो पापाचार तुम्हारे दिल पर डालता है।

वह मन्त्र यह है :–

ओ३म् ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥१॥
ओ३म् समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहो रात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥२॥
ओ३म् सूर्याचन्द्र मसौधाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्ष मथोस्वः ॥ ३ ॥

ऋ० अ० ८। मं० ८। व० ४८॥

यह तीन मन्त्र हैं, और ऋग्वेद से लिये गये हैं। संसार में दो नियम काम कर रहे हैं, एक तो शारीरिक नियम अर्थात् भूख और प्यास का लगना या किसी चोट का आ जाना, इस को वेदों में सत कहा है, दूसरा अध्यात्मिक नियम यह बहुत ऊंचा है और पापी इसका चिन्तन तक नहीं कर सकता। सत्य बोलो, रियायत करो, बददिआनत मत बनो, यह सब अध्यात्मिक नियम हैं, इस को वेदों में ऋत कहा है। जब कोई बददिआनत आदमी बेईमानी करता है तो वह जानता है, कि मैं नियम को तोड़ रहा हूं, परन्तु वह समझ लेता है कि यह अध्यात्मिक नियम मुझे दण्ड नहीं दे सकता, परन्तु यह विचार ठीक नहीं है, दण्ड अवश्य मिलता है। यदि हम रुपया बेईमानी से कमाते हैं तो उसका बुरा असर हमारी

सन्तान पर पड़ता है, हमारी सन्तान बुरी होती है और हमारा अंजाम अच्छा नहीं होता, हमारा मन अशान्त रहता है।

ऋत और सत्य (शारीरिक और आत्मिक) जो दो प्रकार के नियम हैं (अभीद्धात) परमात्मा के ज्ञान से (तपसः) और उस की महान शक्ति से उत्पन्न हुए। यह सब चीज़ों को स्थिर रखने के लिये मौजूद हैं। जब परमात्मा ने नियम उत्पन्न कर दिये (क्योंकि यह उस में मौजूद थे) तो रात्रि उत्पन्न हुई।

यह सृष्टि सदैव रहने वाली नहीं है विद्वान् लोग मानते हैं कि यह किसी न किसी दिन नष्ट होगी, और अवश्य होगी। एक दिन आयेगा जब कि सूर्य की गर्मी समाप्त हो जायेगी और ज़मीन सर्द पड़ जायगी। साइंस यह साबित करती है कि ज़मीन किसी समय में गोलाकार थी और अग्नि की तरह गर्म और चमकने वाली थी। जब यह ठण्डी हुई तो बन ही बन इस में उत्पन्न हो गये। पत्थर का कोयला जो कि पहाड़ों की तह के अन्दर पाया जाता है, इस से साबित है। यह कोयले की कानें इन बनों का शेष ही हैं। हिमालय की चोटी और चट्टानों पर समुद्री जानवरों की हड्डियां पाई जाती हैं, जिन से साबित होता है कि जहाँ आज पहाड़ हैं, वहां पहिले समुद्र था और जहां समुद्र है, वहां पहाड़ थे, इसलिये वर्तमान सृष्टि नित्य नहीं है। इस का आरम्भ था, और अन्त भी होगा। आप इस के साथ इस की आयु का चिन्तन करें। वर्तमान सृष्टि कब बनी ? इसके पहिले क्या था ? उससे पहिले क्या था ? तात्पर्य यह है कि हम को माना पड़ता है कि सृष्टि क्रम का आरम्भ कोई नहीं, यह अनादि काल से ऐसा ही है और अनन्त काल तक ऐसा चला जायगा। अगर परमात्मा अनादि है और यदि वर्तमान सृष्टि पहिली और अन्तिम सृष्टि है तो परमात्मा का सदैव के लिये सृष्टि कर्त्ता होना ठीक नहीं रहता। इस लिये

यह हम को मानना पड़ता है कि जिस प्रकार परमात्मा अनादि है उसी प्रकार सृष्टि क्रम का यह सिलसिला अनादि है। कोई समय था, कि पहिले पहिल रात्रि थी, न सूर्य था, न चांद, सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार आच्छादित था। मनुस्मृति में भी ऐसा ही लिखा है "आसीतइदं" रात्रि के बाद परमात्मा ने इच्छा की, कि अन्धकार को दूर किया जावे। मनुस्मृति में परमात्मा को अन्धकार के दूर करने वाला लिखा है। इसके बाद परमात्मा ने उछलने वाला समुद्र पैदा किया, इस हलचल वाली प्रकृति अवस्था से परमात्मा ने सम्बत्सर पैदा किया, सम्बत्सर को वर्ष कहते हैं, संस्कृत में सम्वत्सर को प्रजापति भी कहते हैं, प्रजापति को ब्रह्मा या हिरण्यगर्भ भी कहते हैं, और ब्रह्मा के यह अर्थ भी लेते हैं, जब कि प्रकृति हरकत के सबब से गोलाकार हो जाती है। इसी सम्वत्सर प्रकाशमान गोलाकार से उस परमात्मा ने जो कुछ कुदरती तौर पर हर एक चीज को अपने काबू में रखता है, दिन रात धारण करते हुए सूर्य, चांद और पृथिवी को, लोक और लोकान्तरों को जैसा कि पहिले था पैदा किया। मनुस्मृति में भी इस का ज़िकर आता है। इस गोलाकार में परमात्मा ने इस तरह बास किया, कि जिस तरह अण्डे में जीव करता है। जब वह फट गया तो सूर्य, चांद बगैरह २ पैदा हुए। इस मन्त्र में सृष्टि की उत्पत्ति का ज़िकर है, और इस में परमात्मा की महानता का वर्णन किया गया है। जब हम इस मन्त्र के अर्थों पर विचार करते हैं तो हमें परमात्मा की असीम शक्तियों का ख्याल आता है। पाप के अर्थ हैं, परमात्मा की आज्ञा के विरुद्ध चलना। अगर मैं चोरी करने लगूं, और अगर किसी समय मेरा अफसर मेरे सामने आ मौजूद हो तो क्या, चोरी का ख्याल मेरे दिल से भाग नहीं जायगा ?

इसी तरह परमात्मा की महानता को अनुभव करने से पाप करते समय पाप दूर भाग जाता है। वहां जोलोग अपने परमात्मा को किसी खास जगह में बन्द करके रख छोड़ते हैं उन के अन्दर परमात्मा की बुजुर्गी और महानता का ख्याल न आये, तो न आये, मगर एक आर्य से यह कभी नहीं हो सकता, कि वह इस महान् शक्ति को महसूस न करे।

इखलाकी ज़िन्दगी एक युद्ध है, पाप पुण्य को दबाना चाहता है। इस देवासुर संग्राम में हमें किसी सहारे की ज़रूरत है। तो क्या हमें किसी मामूली आदमी का सहारा लेना चाहिये? या उस परमात्मा का जो महान् से महान् है, और सब का पैदा करने और पालन करने वाला है। यह मन्त्र उपदेश करता है, कि तू उस परमात्मा को अपना मित्र समझ, उसी ने तुझ को पैदा किया वही तेरा सहारा है, वही तेरी माता है और वही पिता, वही रिश्तेदार और मित्र, वही तेरा धन है, वही तेरा सब कुछ है। इस लिये पाप से दूर भागने के वास्ते तू उसी परमात्मा का सहारा ले।

दो लड़ते हुए बच्चों को माता शान्त करा देती है, जब माता खफा हो रही हो, तो घर का बुजुर्ग उस को शान्ति दे सकता है। मगर जब वह भी अशान्त हो, तो सिवाय परमात्मा के और कहां से सहायता मिल सकती है। हम सब अशान्त हैं, हम किस से शान्ति पायें? वह कौन सा बड़ा पुरुष है, किस की हम मदद लें।

मुहल्ला बेशक एक घर के मुक़ाबले में बड़ा है। मगर मुहल्ले की लाहौर शहर के आगे क्या हक़ीक़त है। लाहौर की पंजाब के आगे क्या हकीकत है। पंजाब की हिन्दुस्थान के आगे क्या हकीकत है। हिन्दुस्थान एशिया के आगे कुछ हकीकत नहीं रखता।

एशिया सारी दुनियां के आगे बिल्कुल हेच है, और दुनियां सारे निज़ाम शमशी (सौर-मण्डल) में एक नाचीज़ सी वस्तु है, और यह निज़ाम शमशी इस ब्रह्माण्ड के दूसरे निज़ाम शमशियों के मुकाबले में बिल्कुल तुच्छ है, तो फिर आप ही बतायें कि इस ब्रह्माण्ड-पति के सामने इस छोटे से मनुष्य की क्या हकीकत और बसात है ?

इस तरह चिन्तन करने पर हम अपनी तुच्छता को अनुभव कर सकते हैं। और हमारे दिल में परमात्मा की बड़ाई असर कर जाती है। हम उस को हर जगह मौजूद अपना हाकिम, हमारे पापों की सज़ा देने वाला और अपना सच्चा रहबर समझने लग जाते हैं। वह पवित्र है, और उस की पवित्रता का चिन्तन करने से हम पवित्र बनते हैं। वह महान् है, उस की महानता का चिन्तन करने से हम महान् बनते हैं। वह पापों से परे है, और हमारे पापों को जानने वाला और उन की सज़ा देने वाला है। उस का चिन्तन करके हम पापों से बचने के वास्ते कोशिश करते हैं। मैं आप से प्रार्थना करता हूं, कि आप इन मन्त्रों पर गौर करें और उनके तात्पर्य्य से फायदा उठावें।

सन्ध्या के पहिले तीन मन्त्रों में मन की शान्ति और अङ्गों की शुद्धि के वास्ते प्रार्थना की गई है। इस मन्त्र में अङ्गों को शुद्ध करने और शुद्ध रखने का तरीका बताया गया है।

मनसा परिक्रमा मन्त्राः ।

मनसा परिक्रमा शब्द के अर्थ मन के ज़रिये से घूमना है । सनातनी लोग जिस वक्त सन्ध्या करते हैं, तो आपने देखा होगा, कि वह सूर्य्य को देखते हुये एक टांग के बल चारों तरफ घूमते हैं । किसी चीज़ की परिक्रमा करना उस की इज्ज़त करना समझा जाता है, यही वजह है, कि मन्दिरों के इर्द गिर्द भी घूमा जाता है । परन्तु स्वामी जी ने यह देख कर कि परमात्मा की परिक्रमा असम्भव है, और हमारा ताकत से बाहर है, इस लिये उन्होंने यह आज्ञा दी है, कि मन के ज़रिये से परिक्रमा करने को कोशिश करनी चाहिये । अगरचे मन से भी नहीं हो सकती, जैसा कि ईश उपनिषद् का वाक्य है :-

अनेजदेकं मनसो जवीयो ।
नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत् ॥
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत् ।
तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥

अर्थात् इन्द्रियां और देवता उस तक नहीं पहुंच सकते, क्योंकि वह वहाँ पहिले ही मौजूद है । मन की ताकत ख्वाह दुनियां की तमाम ताकतों से बढ़कर है, और यह एक सैकंड में योरुप अमरीका और दीगर लोक लोकान्तरों तक पहुंच जाता है, मगर परमात्मा इस से भी ज्यादा वेगवान है, इस लिये पूरे तौर पर मन से भी परमात्मा की परिक्रमा नहीं हो सकती, फिर भी हम उस के द्वारा उस तक पहुंचने का यत्न करते हैं ॥

मनसा परिक्रमा के छः मन्त्र और आप उन का पाठ जानते हैं। इन मन्त्रों में सब से पहिले दिशाओं का नाम हैं, अर्थात् पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, नीचे, ऊपर। इन मन्त्रों में परमात्मा के छः नामों का वर्णन है, अर्थात् अग्नि, इन्द्र, वरुण, सोम, विष्णु और बृहस्पति। अग्नि से ज्ञानस्वरूप तथा मग्न करने वाले परमात्मा का, इन्द्र से धन देने वाले परमात्मा का, वरुण से श्रेष्ठ, दिलों में व्यापक परमात्मा का, सोम से शान्त-स्वभाव प्रक्रिया करने वाले का, विष्णु से सर्वव्यापक का, बृहस्पति से आकाश के मालिक या वेद के पति का तात्पर्य्य है। इस से आगे यह बतलाया गया है, कि परमात्मा अंधकार से रक्षा करने वाले हैं, परमात्मा तिरश्चिराजी (टेढ़े चलने वालों) से रक्षा करने वाले हैं। वह पृदाकू (अज़दह वगैरह) से बचाने वाले हैं। वह स्वज (बीमारी) और श्वित्र (सफेद कोढ़) से रक्षा करने वाले हैं वगैरह २।

इस के बाद इषवों (बाणों) का वर्णन है पहिले मन्त्र का इषव आदित्य है। आदित्य का अर्थ अढ़तालीस वर्ष का ब्रह्मचारी और सूर्य्य की किरणें हैं।

दूसरे मन्त्र में पितर आया है, इस का अर्थ माता पिता वगैरह या वह लोग जो बुद्धि द्वारा हमारी रक्षा करने वाले हैं और उन के द्वारा किया जाने का वर्णन है। यह शब्द मौसमों का भी बोधक है, और इसी तरह अन्न वगैरह भी इषव हैं, और आगे अशनि (बिजली) और वर्षा भी इषव वर्णन किये गये हैं॥

सायण के अर्थ

अब देखना चाहिये कि सायण ने क्या अर्थ किये हैं, इस विषय में विचार से प्रतीत होता है, कि सायण ने जो अर्थ किये हैं,

उन को बुद्धि कबूल नहीं कर सकती। सायण बतलाता है, कि मशरिक (पूर्व) की दिशा में काले सांप से रक्षा करने वाला सूर्य्य और इसी तरह से हर एक मंत्र में मुख्तलिफ किसमों के सर्पों का ज़िकर है, जिन से रक्षा करने के किये उन में प्रार्थना की गई है। गोया सर्पों की पूजा पर यह मन्त्र लगाये गये हैं। मगर सिवाय इस के कि वेदों में सर्प की पूजा मानी गई है, वह कुछ और नहीं बतलाता कि वह रक्षा करने वाले सर्प कहां रहते हैं, आया इस लोक में अथवा पाताल में।

ऐसे अर्थों को बुद्धि कबूल नहीं करती। वेद मन्त्रों के अर्थ पदार्थ विद्या से मिलते हैं, जिस परमात्मा ने वेदों का ज्ञान दिया, उसी ने सृष्टि नियम को बनाया, इसलिए सृष्टि नियम और वेदों में कोई विरोध नहीं होना चाहिये।

वेदों के अर्थ तीन किसम के होते हैं। अध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक।

इन छः मन्त्रों में अग्नि इन्द्र वगैरह जो शब्द आते हैं, उनकी बाबत साधारण पुरुष के लिये यह समझना मुश्किल है, कि मशरिक (पूर्व) का अग्नि शब्द से और दक्षिण का इन्द्र शब्द से क्या सम्बन्ध है। विचारशील साइंसदान विचार करें, तो किसी कदर उनका तात्पर्य्य समझ में आ सकता है। मसलन छठे मन्त्र में "श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः" आया है, इस से यह प्रतीत होता है, कि सफेद कुष्ट वर्षा के ज़रिये से दूर हो सकता है, मगर हम इस विषय में पूर्ण सम्मति नहीं दे सकते, क्योंकि इस बात का मण्डन करना किसी बड़े डाक्टर का काम है, और इसी तरह से किसी विद्वान् का काम है, कि वह वेद की सच्चाई को परखे कि बनस्पति और आदित्य की किरणें जो वर्णन की गई हैं, उनसे जीव मात्र की

रक्षा होती है। पर हम सिर्फ इतना जानते हैं, कि जहां धूप होती है, वहां प्लेग नहीं होती। ऐसे ही सूर्य्य की किरणों से और बेशुमार लाभ हैं। मैं इन मन्त्रों के साइंटिफिक अर्थ करने योग्य नहीं, कोई विज्ञानी पुरुष कर सकता है।

ओ३म् प्राची दिगग्निरधिपति
रसितो रक्षिता ऽऽदित्या इषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो
रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्योऽस्तु।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं
वो जम्भे दध्मः। १।

अर्थ—प्राची (पूर्व) दिशा इस में ज्ञान स्वरूप परमात्मा हमारे पति हैं। अन्धकार से रक्षा करने वाले हैं। आदित्य अर्थात् विद्वान् लोग उस के इषव हैं जो ईश्वर के गुण और ईश्वर के रचे हुए पदार्थ जगत् की रक्षा करने वाले हैं, और पापियों को वाणों के समान पीड़ा देने वाले हैं उन को हमारा नमस्कार हो। जो हम से द्वेष करता है, और जिस से हम द्वेष करते हैं, उस को आप के व। में करते हैं। इस मंत्र का यह भी अर्थ हो सकता है, कि काम क्रोध आदि जो हमारे अन्दर के दुश्मन हैं उन को जीतें और वश में लावें।

ओ३म् दक्षिणादिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी
रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमो० ।२।

दक्षिण दिशा में इन्द्र नाम से परमात्मा का वर्णन है, बडी ताकत वाले से इन्द्र मुराद है। वह तिर्यक् योनियों से रक्षा करने वाला है। पितर जिस के इषव हैं, पितर शब्द के अर्थ मौसम के

भी हैं, अर्थात् मौसमों द्वारा अथवा ज्ञानी लोगों द्वारा रक्षा करने वाला, उस को हमारा नमस्कार हो । वगैरह २ ॥

ओ३म् प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः
पृदाकू रक्षिताऽन्नमिषवः । तेभ्यो नमो० ।

पश्चिम दिशा में वरुण अर्थात् सब से उत्तम सब का राजा परमेश्वर है, जो बड़े-बड़े अजदहा आदि विषधारी प्राणियों से रक्षा करने वाला है, और अन्न जिसके वाण हैं, उस को हमारा नमस्कार हो, वगैरह २ । इस मन्त्र में पृदाकू (अज़दहा) से रक्षा करने वाला मुराद है, और अन्न को इषव बतलाया गया है, अर्थात् अन्न द्वारा परमात्मा हमारी पालना करते हैं, इस लिए अन्न इषव है ।

ओ३म् उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः
स्वजो रक्षिताऽशनिरिषवः । तेभ्यो नमो० ।

उतर दिशा में सोम अर्थात् शान्त स्वभाव स्वामी और भ ी प्रकार रक्षा करने वाला जो परमात्मा है, और बिजली जिसके तीर हैं उस को हमारा नमस्कार हो, वगैरह २ ॥

ओ३म् ध्रुवादिग्विष्णुरधिपतिः
कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः । तेभ्यो नमो०

नीचे की दिशा में विष्णु अर्थात् व्यापक नाम से जो परमात्मा है, और जिस के वाण सबज़ रंग वाले वृक्ष आदि के समान हैं, ऐसे परमात्मा को हमारा नमस्कार हो, वगैरह २॥

ओ३म् ऊर्ध्वादिग् बृहस्पतिरधिपतिः
श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः । तेभ्यो नमो०

ऊपर की दिशा में बृहस्पति अर्थात् बाणी का स्वामी जो परमेश्वर है, और जो वर्षा रूपी बाणों से हमारी कोढ़ आदि बीमारियों से रक्षा करता है, उस को हमारा नमस्कार हो, वगैरह २ ॥

इन मन्त्रों में परमात्म देव का भिन्न-भिन्न नामों से वर्णन करके उन की शक्तियों को दर्शाया है। इनसे यह मतलब नहीं कि ज्ञान स्वरूप परमात्मा पूर्व दिशा में और धन वाले परमात्मा दक्षिण दिशा में विद्यमान् हैं, बल्कि परमात्मा सब दिशाओं में विराजमान हैं, और उन इषवों द्वारा हमारी रक्षा करते हैं, जो इन मन्त्रों में वर्णन किये गये हैं। मनुष्य के लिये ज़रूरी है, कि वह इन इषवों के लिये परमात्मा का कृतज्ञ हो, और उस के आगे झुके। इन मन्त्रों से हम क्या सीखते हैं। इन मन्त्रों में बड़े ज़ोर से परमात्मा की सर्वव्यापकता का वर्णन किया गया है। जिस समय मनुष्य के हृदय में यह ख्याल कायम हो जाता है, कि परमात्मा सर्वव्यापक है, तब पाप भाग जाते हैं, और मनुष्य के जीवन में अद्भुत् तबदीली पैदा हो जाती है। जो मनुष्य सब तरफ परमात्मा का राज्य देखता है, उस का दुश्मन क्या बिगाड़ सकते हैं। जिन पुरुषों ने इस सचाई को अनुभव कर लिया, कि परमात्मा सब जगह व्यापक हैं, और हमारे रक्षक हैं, उन की ज़िन्दगियां पलट गई, उन्होंने बड़े-बड़े काम कर दिखाये, जिन्होंने इस सचाई को अनुभव नहीं किया, उन्होंने धक्के खाये, और खराब हुए। दुनियां में कई पुरुष इस प्रकार के हैं, कि जब उन पर ज़रा मुसीबत आती है, तो वह परमात्मा से बेमुख हो जाते हैं, उन की बहुत थोड़ी समझ होती है, वह दुःख की तह तक नहीं पहुंच सकते, और समझ नहीं सकते कि इस परमात्मा को हमारी क्या भलाई मकसूद है? इस लिये धार्मिक मनुष्य की चित्त वृत्ति

यह होनी चाहिये कि मुसीबत में परमात्मा से वेमुख न हो, बल्कि सहन शील बन जाये ॥

धार्मिक ख्याल से आदर्श पुरुष वह है, जो अपनी मर्ज़ी को परमात्मा की मर्ज़ी से मिला देता है। वह हर एक हालत पर परमात्मा की मर्ज़ी को प्रधान ख्याल करता है। ख्वाह उस की मर्ज़ी परमात्मा की मर्ज़ी के खिलाफ ही हो। सच्चे भक्त परमात्मा की मर्ज़ी के आगे उफ तक नहीं करते, और अपने आप को उस की इच्छा में लीन कर सकते हैं। स्वामी दयानन्द जी ने मृत्यु के समय परमात्मा से भारतवर्ष की रक्षा के लिये प्रार्थना नहीं की, बल्कि यही कहते हुए प्राण दिए कि

"हे पिता आपकी इच्छा पूर्ण हो" ॥

जरूरी है कि मनुष्य परमात्मा की इच्छा अनुभव करे, और दुःख और तकलीफ को बड़ी खुशी से सहे। हमारी दृष्टि बहुत छोटी है, हम यह नहीं समझ सकते, कि यह मुसीबत जो हम पर नाजल हुई है, हमारे कल्याण के लिये है या दुःख के लिये। परमात्मा ऐसी कृपा करें, कि हम उन की इच्छा में अपनी भलाई समझें, और विद्वानों की सत्संगति और औषधियों के हवन से बलवान हो कर संसार में उत्तम रीति से जीवन व्यतीत करें जो इन वेद मन्त्रों का आशय है। अब सन्ध्या का वह आदर्श हमारे सामने आता है, जिस को उपस्थान कहते है। "उप" यानी नज़दीक, "स्था" यानी ठहरना। इस के अर्थ हैं पास बैठना। इस में शक नहीं कि पाप हमारा दुश्मन है, और कई एक ऐसी ताकते हैं, जो हम को गिराना चाहती हैं। अपने बचाव के लिए हम को अच्छे सहारे की ज़रूरत है, एक मिसाल से मैं यह बात आप के सामने साफ करना चाहता हूं। छोटे बच्चे मिल कर एक

जगह पर खेल रहे हैं, खेलते-खेलते वह जरा गली में घर से दूर चले जाते हैं, वहां वह सब मिल कर अपने एक साथी को तंग करते हैं, कोई उसे मखौल करता है, कोई मारना चाहता है, मगर वह सताया हुआ बच्चा झट अपनी मां की गोद में जा बैठता है। वहां वह निर्भय है, प्रसन्न है, हंसता है और खुश होता है। वह जानता है कि अपनी मां की गोद में वह हर तरह से महफूज़ है। ठीक ऐसे ही हमारा हाल है, (परमात्मा हमारी मां है और हम उन के बालक) पाप हमें खराब करना चाहता है, इस से बचने के वास्ते हम को अपनी माता का सहारा लेना चाहिये। जब आत्मा चाहता है, कि मैं ऐसी जगह पर पहुंचूं, जहां कोई खतरा न हो तो उस जगह तक जाने के वास्ते किसी साधन का होना भी जरूरी है, कठोपनिषद् में आता है।

यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्मयत्परम्।
अभयं तितीर्षतां पारंनाचिकेतँ शकेमहि॥

अर्थ—परमात्मा अभय किनारा है, लोग इस भवसागर से उतर कर अभय किनारे की तरफ जाना चाहते हैं, जब उपासक उस जगह जाना चाहता है, वह दुश्मनों से बच कर परमात्मा के पास जा बैठता है।

आगे तीन मन्त्र उपासना के हैं, यह हम को सिखाते हैं, कि हम किस तरह से परमात्मा के पास जा सकते हैं, और अभय हो सकते हैं, वह यह मन्त्र हैं।

उपस्थान मन्त्राः ।

**ओ३म् उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्
देवं देवत्रा सूर्य्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ।**

यजु० ३५।१४।

हे परमात्मा आप जो पाप से परे हैं, जो सुख स्वरूप हैं आप जो उस समय भी मौजूद रहते हैं, जब कि और सब कुछ नष्ट हो जाता है। आप सब के मालिक हैं, आप देवताओं के भी मालिक हैं। आप हे परमात्मा प्राणदाता हैं। आप ज़िंदगी देने वाले हैं। हे दीनानाथ! आप जो उत्तम से उत्तम ज्योति स्वरूप हैं, आप का दर्शन करते हुए हम आप को प्राप्त हों ॥

परमात्मा के गुणों का वर्णन करके इस मन्त्र में यह प्रार्थना की गई है, कि हम उस परमात्मा को प्राप्त हों, जो पाप से परे हैं, जहां अज्ञान जा नहीं सकता। हम उस परमात्मा को देखें जो ज्ञान दाता है, जो कि प्रकाश का देने वाला है। मैं आप को तवज्जह दो लफ़्ज़ों की तरफ़ दिलाना चाहता हूं। (१) तमसस्परि (२) उत्तरम्। ब्राह्मण ग्रन्थ में लिखा है, कि तम के अर्थ पाप के हैं। मैंने तमसस् के अर्थ अज्ञान और पाप किये हैं, क्योंकि जो अज्ञान से परे हैं, वह पाप से परे है, हम ने अन्धकार और पाप से बचने के वास्ते उसके पास जाना है, जो सब से उमदा ज्योति है। ज्योति से मुराद उत्तम से उत्तम ज्योति है। इस जगह इस से मतलब उस परमात्मा से है, जो अज्ञान रहित और पवित्र है। पाप से और अज्ञान से हट कर हम ने उस ज्ञानमय ज्योति स्वरूप

परमात्मा की शरण में जाना है, जो कि ज्ञान का भंडार है। अब तीसरा शब्द है "पश्यन्त" जिसके अर्थ हैं देखते हुए अर्थात् उस उत्तम ज्योति को देखते हुए हम उस के पास जावें, पिछले मन्त्रों में इस का जिकर नहीं आया, परमात्मा का दर्शन एक साधारण बात नहीं है। इस वास्ते इस का जिकर वहां नहीं है, उसका दर्शन उस समय तक नहीं होता, जब तक आत्मा इन सब साधनों में से न गुज़रे, जिनका जिकर सन्ध्या के पहिले मन्त्रों में आ चुका है। इस दर्शन का क्या फल है?

हम ने पाप से निकल कर उत्तम ज्योति के पास जाना है, मुण्डक उपनिषद् में आया है कि :—

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं
कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान् पुण्यपापो विधूय
निरञ्जनः परम साम्यमुपैति।

जिस समय देखने वाला देखता है, उस प्रकाशमय परमात्मा को जो वेद का कारण है, जो सारी दुनिया का मालिक है, तब वह ज्ञानी पुरुष पुण्य और पाप को परे फेंक कर दुःख से रहित हो कर परम गुणवान्न हो जाता है। वह उस समय परमात्मा के गुणों वाला हो जाता है।

मैं इस बात की व्याख्या नहीं करता, कि पुण्य को फेंकने के क्या अर्थ हैं।

जिस तरह बालक औरों से बचने के वास्ते प्यारी माता की गोद में जा बैठता है, ऐसे ही हम पाप रूपी शत्रुओं से बचने के वास्ते इस बात की ख्वाहिश करते हैं कि इस सारे संसार की माता जिस ने इस जगत को रचा और जो इस जगत का पालन पोषण

करती है उसके साये में पनाह लें। अगर बालक को सिर्फ यह कह दिया जावे, कि डरो मत तुम्हारी मां तुम्हारे पास है, और तुम्हारा बाप भी मौजूद है। उसको हरगिज़ तसल्ली नहीं आती, जब तक कि वह अपनी आंखों से देख न ले। ठीक ऐसे ही हमारा हाल है। जब तक परमात्मा के दर्शन न हों हम को न ही वह शान्ति प्राप्त हो सकती है, और न वह सुख मुयस्सर आता है, जिस का कि जिक्र इस मन्त्र में किया है। मुण्डकोपनिषद् २।२।८ में आया है।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

अर्थात् उस परमात्मा को देखने पर दिल की गांठें खुल जाती हैं सब शक दूर हो जाते हैं, जब सामने देख लिया तो शक किस का ? उनके अर्थात् जिस ने परमात्मा के दर्शन कर लिये हों सब कर्म नष्ट हो जाते हैं। उसके सब पाप दूर हो जाते हैं।

उपस्थान के अर्थ यह है कि हम उस परमात्मा के दर्शन लाभ करें। सब से पहिले और जरूरी बात यह है कि हम में दर्शन करने की इच्छा हो हम इस दुनियां में सोये हुए हैं। संयमी उस रात को जागता रहता है जब और सोते हैं और वह उस दिन को सोया रहता है जब कि और जागते हैं। गीता अध्याय २ श्लोक ६९ मे आया है।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

एक पहलू में हम सोये हुए हैं और दूसरे पहलू में हम जागते है : जहां तक इस दुनिया का सम्बन्ध है हम जागते हैं जब कभी कोई हमारी चीज़ उठा ले जाता है तो हम उस से लड़ने

लग जाते हैं। मगर जहां तक परमार्थ का संबन्ध है हम सोए हुए हैं, ज़रा फिकर नहीं करते कि हमारा अंजाम क्या होगा मगर संयमी परमार्थ के विषय में जागता है और स्वार्थ के विषय में सो जाता है यह कृष्ण भगवान का तात्पर्य है।

नीचे के ऋग्वेद के मंत्र में कहा है कि जो हमारी ख्वाहिश है उसको पूरा करने वाला परमात्मा है।

यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽस्तु वयं स्याम-पतयोरयीणाम् ।

'हे पिता ! जिस ख्वाहिश को मन में रखते हुए हम आपके पास आते हैं, वह ख्वाहिश हमारी पूरी हो जाती है, आप ही उस के देने वाले हैं।'

जब परमात्मा के दर्शन की ख्वाहिश हम में तेज़ होगी, तो अगर हम मुनासिब तरीके से उसके पास जावें तो वह अवश्य हमारी ख्वाहिश पूरी करेंगे।

इन मन्त्रों में जीवात्मा को कहा गया है कि अब तुम इस योग्य हो कि पाप पुण्य को छोड़ कर आज़ाद हो जाओ, अगर तुम ख्वाहिश करो कि तुम्हें मेरे दर्शन हों। जब यह ख्वाहिश हुई तो जीवात्मा परमात्मा के समीप होने का उद्योग करता है, उसका मन सुखी और शांत होता है, और आप पुण्यवान बनता है, और जब तक वह ख्वाहिश उत्पन्न नहीं होती तब तक कुछ नहीं बनता।

ओं उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः
दृशे विश्वाय सूर्यम् । यजु० ३३ । मं ३१॥

वह परमात्मा और जिस से वेद प्रकट हुए हैं, जो चराचर जगत् को ज़िन्दगी देते हैं, विश्व को देखने के लिये जो केतु हैं, उस परमात्मा के पास केतु हम को ले जाते हैं, केतु के हिन्दी में

कई अर्थ है (१) किरणें (२) ज्ञान की किरणें अर्थात् ज्ञान (३) रास्ते पर जाने के वास्ते जो झण्डियां होती हैं ॥

वह केतु जो हम को परमात्मा के पास ले जाते हैं क्या हैं ? सड़क की झण्डियां रास्ता दिखलाती हैं । इस संसार में कौन-सी झण्डियां हैं, जो हम को असली मंजिल तक ले जाती हैं । इस मन्त्र में इन झण्डियों का ज़िकर नहीं है, मगर आप के बोध के वास्ते कहे देता हूं, कि इन से मुराद बनारस, विन्द्राबन और कटक की झण्डियों से नहीं है । बल्कि इन का तात्पर्य सिर्फ ज्ञान से है, इसका सबूत दूसरे शास्त्रों में मिलेगा । मैं योग शास्त्र से इन झण्डियों का ज़िकर करना चाहता हूं ।

सत्य यह है कि उस परमात्मा तक हम कभी भी नहीं जा सकते, जब तक हमारा मन पवित्र और साफ न हो, उस के वास्ते सन्ध्या में खास मन्त्र आया है, "ओं महः पुनातु हृदये" वह परमात्मा जो महान् से महान् है, हमारे दिल को शुद्ध करें । सब से पहला साधन ऋषियों ने हृदय की शुद्धि बतलाई है, जब तक यह न हो हम ईश्वर के दर्शन नहीं कर सकते । जिस अवस्था में हम और आप लोग हैं, हमारी शुद्धि नहीं हो सकती, हम आपस में एक दूसरे को चाहे कितना ही अच्छा कहें, मगर याद रक्खें, कि हृदय की सफाई निहायत मुश्किल है । एक अंग्रेजी किताब से मैं आप को एक कहानी सुनाना चाहता हूं । एक बूढ़ा आदमी ख्याल करता था कि मेरी ज़िन्दगी सुख शांति और नेकी से गुज़री है । मैंने किसी का माल नहीं लिया, न किसी को मारा है और न ही किसी को दुःख दिया है । अपने दिल में इस तरह सोच ही रहा था, कि यकलखत उसकी पहली ज़िन्दगी का खाका उसकी आंखों के सामने आ नमूदार हुआ । उसने अपनी याददास्त से पूछा, बता क्या कहती है ? उसकी स्मृति शक्ति ने कहा, तूने तो

खून किया है, बुड्ढा हैरान हुआ है ! मैं और खून ! स्मृति शक्ति ने जवाब दिया, हां एक दफ़ा तुम दो आदमी आपस में बैठे हुए बातें कर रहे थे कि तुम्हें तैश आ गया, गुस्से में आकर तुमने एक बोतल उसकी तरफ फेंकी, खैर वह आदमी तो बच गया मगर महिज़ अपनी फुरती से, तुमने तो उसको मार ही दिया था। तुम ने औरों का माल भी बेजा तौर पर लिया है, तुम ने बहुतों के कपड़े उतारे हैं। बुड्ढा इस बात पर चौंक पड़ा, इसरार पर पता लगा, कि उसके एक मित्र ने उसे अपने लड़कों का सरबराह बना दिया था। पहिले तो उसने लड़कों को अच्छी तरह से परवरिश की, मगर एक दफा बुड्ढे के दिल में ख्याल आ गया, कि हो न हो, लड़कों को किसी तरह मार डाले और उनका माल खुद ले ले।

हम में से नेक से नेक आदमी कितनी दफा गरीबों के कपड़े उतारता है, कितनी दफ़ा हिंसा करता है, और किस कदर पाप करने पर माइल होता है। बड़े-बड़े ऋषि और मुनि यह कहते आये हैं, कि हम तो नीच और पापी हैं, इस का यह मतलब नहीं कि वह सचमुच कायक कर्म के द्वारा नीच और पापी हैं, बल्कि वह अपनी कमज़ोरियां महसूस करते हैं।

योग शास्त्र में एक सूत्र बताता है, कि दिल की सफाई के वास्ते चार बातें होनी चाहियें, वह मुक्तसर तौर (संक्षेप में) पर यह हैं। दुनियां में चार किस्म के आदमी होते हैं (१) दुनियां में सुखी (२) दुनियां में दुःखी, (मुसीबत ज़दा) (३) पुण्य करने वाले चाहे वह दुःखी हों या सुखी (४) पापी।

चाहिए तो यह, कि जो सुखी हैं हमारे अन्दर उनके वास्ते प्रेम का भाव हो। मगर, अगर हम किसी को बढ़ता हुआ देखें तो हम हसद करने लग जाते हैं। योग शास्त्र में इस को बुरा कहा है,

अगर कोई आदमी अमीर है, तो हम उसकी निन्दा करना शुरू कर देते हैं, और अगर उसके लड़के हैं तो हम दिल में कुढ़ते हैं। अगर उसने मकान बनवाया है, तो हमारे तन मन में आग लग जाती है, ऐसा नहीं चाहिये, योग शास्त्र कहता है, आपस में मैत्री करो, ऐसे आदमी की मदद करो, उसका साथ दो। हिन्दू लोग अपने आपको पवित्र समझते हैं, मगर मेरी यह राय है, और शायद आप मेरे साथ इस में इतफाक न करें कि इन में (हिन्दुओं में) सब से ज़ियादा यही बीमारी है। अगर कोई मुसीबतज़दा हो तो उस को सहायता नहीं देते। कहते हैं, कि इस के कर्म मंदे हैं। हम में मदद, मिहरबानी या करुणा का भाव नहीं। मदद, करना हर एक के वश में नहीं है। मगर करुणा (हमदर्दी) का भाव तो ज़रूर बस में है।

तीसरी बात यह है, कि अगर किसी को अच्छा काम करते देखो, तो उसकी मोदना करो, बोर्डिङ्ग में मैंने देखा है, कि जो लड़के नेक कामों की तरफ झुकाव रखते हैं, जो सन्ध्या, हवन आदि नित्य नियमों का पालन करते हैं उनको दूसरे लोग मक्कार कहना शुरू कर देते हैं। बजाय इसके कि हम उसको शाबास दें, हम उल्टे उनके पीछे पड़ जाते हैं। हम में मोदना का भाव होना चाहिए।

(४) अगर कोई पापी है तो उसके साथ लड़ते ही न रहो बल्कि उसके साथ उपेक्षा (बेपर्वाई) करो, पापी के साथ मित्रता मत करो, बल्कि बेपर्बाई रक्खो जलता हुआ कोयला जला देता है कोयला गर्म हो या सर्द, हरतरह से उसके साथ मिलने से नुकसान ही होगा। ठीक ऐसे ही पापी पुरुष का हाल है, पापी पुरुष की तरफ बे परवाई ज़ाहिर करनी अच्छी है॥

इन चार बातों से हृदय की शुद्धि होती है और हृदय की शुद्धि के बगैर परमात्मा के दर्शन नहीं होते।

केतु के अर्थ ज्ञान के हैं। इस के अर्थ हैं आत्मा और परमात्मा को जानना, चित्त की सफाई रखना। चिन्तन करके स्वाध्याय करना, परम साधन करना यानी ओम् का जप और उसके अर्थ का चिन्तन करना। यह सब से बड़ा सहारा है, इस सहारे को पाकर इन्सान ब्रह्मलोक में महान् होता है, यह सब चीजें हमको परमात्मा तक ले जाती हैं और यह सच्ची झण्डियां हैं जो हमको सच्चा रास्ता बताती हैं। जब हम में परमात्मा तक जाने की तेज़ ख्वाहिश होती है। तो वह बलवान् आश्चर्य रूप परमात्मा मित्र वरुण और अग्नि देवताओं को प्राप्त होता है वह ही अन्तरात्मा, जीवन का दाता, द्यौः, पृथिवी और अन्तरिक्ष में व्यापक है।

ओ३म् चित्रंदेवानामुदगादनीकं,
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आ प्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षꣳ
सूर्यात्माजगतस्तस्थुषश्च स्वाहा॥

यजु० अ० ७।मं० ४२॥

अर्थ—हे स्वामिन्! आप अद्भुत स्वरूप हैं आप विद्वानों के बल हैं। सूर्य्य, चन्द्र और अग्नि के चक्षु अर्थात् प्रकाशक हैं। द्युलोक, पृथिवी और मध्य लोकों को आप ही ने धारण किया हुआ है, आप चराचर जगत् के आत्मा हैं और सुख स्वरूप हैं।

वह परमात्मा देवों को प्राप्त होता है मित्र वह है जो सब के साथ प्रेम करता है अग्नि वह जो विद्वान् हो, वेदों का ज्ञाता हो। वरुण श्रेष्ठ को कहते हैं।

एक दफ़ा प्राणों में झगड़ा हो गया, प्राण कहते थे हम बड़े हैं, जुबान कहती थी मैं, नाक कहती थी मैं, आंखें कहती थीं

हम, हर एक सब से श्रेष्ठ होने का दावा करता था, जब आपस में वे कोई फैसला न कर सके, तो वे प्रजापति के पास गये और उस से इन्साफ चाहा प्रजापति ने कहा कि मैं एक असूल बता देता हूं उस से तुम खुद फैसला कर लेना। जिस के निकल जाने से तुम सब को तकलीफ हो वह सब से अफ़ज़ल(उत्तम) है, इस मन्तव्य को लेकर हर एक बारी-बारी से अपनी श्रेष्ठता आज़माने लगा। सब से पहिले आंखें जिसमें (शरीर) को छोड़ गई। बाकी का शरीर पहिले की तरह खाता था, पीता था, सुनता था और सूंघता था, गरज़ कि (अर्थात्) इस तरह गुज़ारा करता था जिस तरह एक अन्धा आदमी करता है, आंखें इनका कुछ बिगाड़ न सकीं नादिम (निराश) हो कर वापस आ गई।

जब वह आ गई, तो कान चले गये। इस पर भी वह देखते, खाते, महसूस करते और चलते फिरते थे, इनका गुज़ारा ठीक वैसे ही हो जाता था जैसे एक बहरे आदमी का होता है।

इसी तरह बारी-बारी से ज़ुबान, हाथ पांव वगैरह चले गये अगर अपनी कमजोरी की वजह से बाकी शरीर का कुछ न कर सके, जब प्राण की बारी आई, तो अभी गया भी नहीं था, बल्कि सिर्फ चलने की तैयारी ही करता था कि बाकी सब का दम घुटने लगा। आंखें बंद हो गई, कान सुन न सके, ज़ुबान बोल न सकती थी, हाथ काम से रह गये, पांव चल न सकते थे जो जहां था वह वहां का वहां ही रहा। सब ने अर्ज की कि हे भगवन्! हे प्राण!! आप के वगैर हम सब बेकार हैं, आप हमको न छोड़िये, आप हम सब में से श्रेष्ठ हैं।

एक और जगह उपनिषद् में वर्णन है कि प्राण क्यों बड़े हैं? बाकी सब अंग अपने-अपने रसों में मस्त हो जाते हैं, मगर

प्राण कभी भी अपने फर्ज को नहीं छोड़ता, आंखें अगरचे (यद्यपि) जिसम के वास्ते देखती हैं, मगर अकसर औकात (प्रायः) किसी खूबसूरत चीज़ पर टिक जाती है कानों को मीठे स्वर का व्यसन है नाक खुशबू के पीछे मारा-मारा फिरता है। मगर प्राण एक इस किसम की चीज़ है कि जिस को कोई चीज़ अपने फर्ज़ से खींच नहीं सकती, यह खुद कोई चीज ग्रहण नहीं करता, और इसीलिये सब से श्रेष्ठ है। अगर यह हमारे अंदर न हो तो हम कुछ भी नहीं, ठीक इसी तरह एक वेगर्ज (निस्स्वार्थ) आदमी की ज़िन्दगी है। जब हमारी ज़िन्दगी में एक लेश मात्र भी खुदगर्ज़ी न हो, तो उस समय हम अग्नि, मित्र और वरुण कहला सकते हैं।

जिस तरह पत्थर पर मिट्टी का ढेला फैंकने से ढेला खुद टूट जाता है और पत्थर का कुछ बिगाड़ नहीं सकता, ठीक ऐसे ही बेगर्ज़ (निस्स्वार्थ) आदमी का हाल है। स्वामी दयानन्द प्राणवत था, लोगों ने उस पर पत्थर फैंके, गालियां दीं, बुरा भला कहा, मगर उसका कुछ नहीं बिगड़ा, बल्कि उलटे लोग, खुद टूटे, हम को भी प्राणवत होना चाहिये, मगर एक जन्म में प्राणवत होना मुशकिल है, कई जन्मों के बाद दयानन्द, शंकर, बुद्ध, नानक जैसे प्राणवत महात्मा पैदा होते हैं।

जो ज्ञान स्वरूप परमात्मा हैं, वह प्राणवत आदमी की खुद रहनुमाई (मार्ग-दर्शन) करते हैं। वह हमारे चक्षु: हैं, वह खुद हमारे अंदर आ मौजूद होते हैं। भजन में आप गाते हैं "मेरे हृदय आन बसो प्रभू, मेरे हृदय आन बसो" जब सच्चे दिल से कहा जावे, तो सचमुच वह दिल में आ जाते हैं।

एक छोटा-सा असूल मैं और बताना चाहता हूं। लोहे की चकमक के वास्ते कशिश (आकर्षण) है, मगर जब दोनों दूर हों, तो कोई असर नहीं होता, उन्हें नज़दीक-नज़दीक लाते जाओ, जब एक

खास हद्द में आ जावेंगे, तो कशिश शुरू हो जावेगी, और जब बहुत नज़दीक आ जाते हैं तो झट मिल जाते हैं।

जब हम दूर हैं, तो परमात्मा अपनी तरफ हम को नहीं खींचते। मगर जब नज़दीक आना शुरू करते हैं तो थोड़ा-थोड़ा असर शुरू हो जाता है। मगर जब हम काफी नज़दीक हो जाते हैं तो फिर हमें चलना नहीं पड़ता, बल्कि थमने से थम नहीं सकते और ज़ोर से परमात्मा हम को अपनी तरफ खेंच लेता है। भक्त लोग ठीक कहते हैं कि जब हम एक कदम परमात्मा की तरफ जाते हैं तो वह दो कदम आगे बढ़ते हैं। मगर जब तक हम में ख्वाहिश नहीं होती, जब तक हम केतुओं का सहारा नहीं लेते, वह नहीं मिलते। जिस वक्त हम शुद्ध हो जाते हैं, और श्रेष्ठ बन जाते हैं तो हम को ज्ञान आता है फिर हमारा हृदय उस परमात्मा का सिंहासन बन जाता है और उस वक्त जीवात्मा कहने लग जाता है।

भिद्यते हृयदग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयः।
क्षीयन्ते चास्यकर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

कि मेरे सब शक रफ़ा हो गये, और दिल के भेद खुल गए, जिस तरह बालक माता की गोद में जाकर बेखतर (निर्भीक) हो जाता है, हम भी उस सच्ची माता की शरण लेकर डर से रहित हो जाते हैं।

आओ! हम लोग सब मिलकर उस बलदाता के आगे प्रार्थना करें कि हे दीनानाथ हे, हे ज्ञानस्वरूप पिता, हे करुणा के सागर, आप हम पर ऐसी कृपा करो कि हमारे चित्त में शांति हो हमारे अंगों में बल हो, हम को आपका डर हो, हम हे दीनानाथ आपको हर जगह सर्वव्यापक जानें। हमारे दिल में

आपके मिलने की इच्छा हो, हम आपके ज्ञान मार्ग पर चलें। हे दीनानाथ ! हमारा जीवन अन्नवत हो इस जन्म में, या दूसरे जन्म में या किसी अगले जन्म में जब कभी हो, हम आपके समीप बैठें। आप का बल आपका तेज, आपका यश और न्याय हमारे हृदय में हो, आप हे परमात्मा ! इस आर्य जाति को अपना सच्चा भक्त बनाएं, हम आपके सच्चे सेवक बनें और आपकी आज्ञा का पालन करें।

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ
शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतम् ।
अदीनाः स्याम शरदः शतं
भूयश्च शरदः शतात् ॥ यज। अ०३६। मंत्र ॥ २४ ॥

सनातनी लोग इसे पढ़ते समय सूर्य की तरफ बढ़ते हैं। बाज (कई) आर्य समाजी लोग भी स्वामी दयानन्द के भाव को न समझ कर यह कहते हैं कि सूर्य को तरफ ध्यान करके इस मंत्र को पढ़ा जावे। वह सूर्य के असली मायनों (अर्थों) को नहीं समझते। सूर्य से यह मुराद (अर्थ) यह बैरूनी (बाहरी) सूर्य नहीं, बल्कि अन्दरूनी (अध्यात्मिक) सूर्य यानी परमात्मा के अर्थ लिये हैं। यहां पर जो ख्वाहिश ज़ाहिर की गई है उस अन्तर्यामी परमात्मा के सामने की गई है। इस मन्त्र के पहिले हिस्से में परमात्मा के गुणों का वर्णन है इसमें तीन शब्द खास तौर पर आते हैं 'तच्चक्षुः' वह परमात्मा आंख हैं अगर हम किसी ऐसे स्थान पर चलें, जो ऊंचा नीचा हो, तो आंख हमें गिरने से बचाती है जब हम चलते हैं तो यह हमारे रास्ते को बताती है और सफ़र में हम को मंज़िल मकसूद (गन्तव्य)

स्थान तक पहुंचाती है। परमात्मा हमारे लिए अध्यात्मिक आंख हैं, सफ़र हमने जो इस जीवन में करना है, इस जीवन मार्ग के लिए वह परमात्मा ही चक्षुरूप हैं, दूसरी बात यह पाई जाती है कि परमात्मा न सिर्फ रास्ता ही बताते हैं बल्कि वह 'देवहितं' हैं, इसके स्वामी जी ने दो अर्थ किये हैं, (१) जिनको देवता अर्थात् विद्वान् लोग प्यार करते हैं (२) देवताओं का हितकारी है। इस जगह सिर्फ यह ही नहीं कहा कि वह परमात्मा हमारी आंख है, बल्कि उम्मीद (आशा) दिलाई गई है कि उन लोगों के जो उसके भक्त हैं सहायक भी हैं अगर किसी समय हम मुसीबत में पड़ें तो हमें तंग नहीं होना चाहिए, और न यह समझ लेना चाहिए कि हमारी ज़िन्दगी की उम्मीदें खाक में मिल गई हैं, बल्कि उस समय विश्वास रखो, कि परमात्मा सदा उनके सहायक हैं। इस संसार में कभी नहीं हो सकता कि राम बिजय को प्राप्त न हो और रावण जीते, हां थोड़ी देर के लिए पाप की शक्ति प्रबल हो जाए तो जाए लेकिन यह हमेशा के लिए ऐसा नहीं हो सकता, पाप नेकी को दबा नहीं सकता। जब तक परमात्मा इस जगत में विराजमान हैं तब तक पाप का ग़लबा पुण्य पर कभी नहीं हो सकता। इस मंत्र में यकीन (विश्वास) दिलाया गया है, कि परमात्मा देवताओं के हितकारी हैं, और सदा उन का भला करने वाले हैं।

तीसरी बात **'पुरऽताच्छुक्रमुच्चरत'** जो शुरू से है, शुरू क्या? जो शुरू के शुरू से भी पहिले था और जो हमेशा तक रहेगा, जो अनादि समय से अनन्त समय तक या यूं कहो कि सृष्टि और प्रलय के सिलसिले तक जो सदा के लिए इस जगत के अधिपति हैं, और इसमें बिराजमान हैं ॥

परमात्मा सदा के वास्ते हमारे रहनुमा (नेता) हैं, कुछ थोड़ी

देर के लिए नहीं, बल्कि हमेशा से वह हमारे मार्ग प्रदर्शक चले आए हैं और बने रहेंगे। इसके साथ 'शुक्र' का अर्थ पवित्र स्वरूप और पवित्र रहने वाला है, परमात्मा के जो विशेषण इस मन्त्र में किए गए हैं उनमें तीन बातों का खास वर्णन है। (१) कि परमात्मा सबके पथ प्रदर्शक है (२ हमको विश्वास दिलाया गया है कि जो इस रास्ते पर चलते हैं उनकी विजय होती है और जो इससे विरुद्ध चलते हैं उनका क्षय होता है ॥

(३) कि परमात्मा हमको पवित्रता देने वाले हैं जब संसार के काम हमारे मन को मैला कर देते हैं उस समय परमात्मा ही हमारे मन को पवित्रता देने वाले होते हैं। अब उस परमात्मा के चरणों में जाकर हमारे दिल में क्या ख्वाहिश पैदा होती है ॥

'पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः
शतꣳशृणुयाम शरदः शतं'

कि सौ वर्ष हम देखें, सौ वर्ष तक जियें, सौ वर्ष तक बोलें, सुनें, चलें फिरें, और आज़ाद जिन्दगी बसर करें, अगर परमात्मा की इच्छा हो तो इससे भी बढ़कर हम इस संसार में उमर को भोग सकें।

इससे पहली बात जो ज़ाहिर (स्पष्ट) हुई वह यह है कि हम चाहते हैं कि हम कम से कम सौ वर्ष तक जिएं, क्यों ? ऐसा मालूम होता है कि परमात्मा के चरणों में रहकर पूर्ण आयु को भोगना और और अमृत को ग्रहण करना आर्यों के जीवन का आदर्श था । जो मन्त्र हम हर रोज़ हवन में पढ़ते हैं उनमें कभी-कभी आता है कि :—

त्रयम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥]

अर्थात् हम उन तीनों शक्तियों अर्थात् उत्पत्ति, पालन और प्रलय के धारण करने वाले की पूजा करें, जिस तरह से खरबूजा जब तक कच्चा होता है, अपनी बेल के साथ लगा रहता है, मगर जब टूटता है तो पक कर ही टूटता है ॥

इसी तरह परमात्मा से हमारी प्रार्थना है कि हम इस जीवन की लता से कच्चे काटे न जावें, बल्कि जब हम इस से अलग हों, हम धर्म की पवित्रता, पूर्ण आनन्द और नेकी की खुशबू को साथ लेते हुए इस से अलग हों, और अमृत को प्राप्त करें।

जिस तरह खरबूज़ा मिठास को लेकर बेल से अलग होता है, ऐसे ही हम पूर्ण रीति से पक कर इस संसार लता (बेल) से अलहदा पृथक हों, अर्थात् कम से कम सौ साल जियें। हम लोग या हमारे भाई आजकल थोड़े अरसे में ही कट जाते हैं, बाप के सामने प्यारा बेटा, मां के सामने लड़की, भाई से भाई, प्यारे से प्यारा कट जाता है। हमारी आयु बहुत थोड़ी होती जाती है, मैं क्या कहूं, हमारा जीवन आर्य्यों का जीवन नहीं, अगर हम सौ साल तक ज़िन्दगी हासिल नहीं कर सकते और पहिले कट जाते हैं, तलवार से नहीं, बल्कि बीमारी से, तो इस से जाहिर होता है कि हमारा जीवन वैदिक जीवन नहीं है और हमने वैदिक नियमों का पालन नहीं किया। ज़िन्दगी के मुतल्लक (बारे) में एक शख्स (व्यक्ति) का कौल (वचन) है कि हम थोड़ा जियें, मगर अच्छा जियें, अर्थात् हमारा जीवन शुभ जीवन हो। इस के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि दीर्घ, शुभ्र जीवन इस से अच्छा है, इसीलिये आर्य्य लोग परमात्मा से प्रार्थना किया करते थे कि हम सौ वर्ष तक जियें, चलें, फिरें, देखें और सुनें।

बहशियों (असभ्य) लोगों की ज़िन्दगी से हमें क्या प्रतीत होता

है, अगर आप सौ वर्ष तक जीते हैं, मगर नफ़सानी ख्वाहिशों के गुलाम, ऐन्द्रिक सुखों के दास और विषयों में फंसे हुए हैं तो एक वहशी (असभ्य) व्यक्ति से बढ़ कर नहीं। साधारण जीवन को वेद में मनुष्य जीवन कहा गया है और आर्य्य जीवन को देव जीवन का नाम दिया है।

ओ३म् अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मेराध्यताम्।
इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि॥

हे परमात्मा व्रतपते अग्नि! मैं इस व्रत को करूंगा आप इसके पूर्ण करने के लिये मुझे शक्ति प्रदान करें। मैं इस असत् जीवन से सत् जीवन को प्राप्त होऊं।

सत्य जीवन की शतपथ ब्राह्मण में व्याख्या की है, मनुष्य जीवन अनृत जीवन है, यज्ञ में प्रवेश करना देव जीवन है और यह सत्य का जीवन है। एक और तमीज़ (भेद) भी रक्खी गई है कि—

परोक्ष प्रिया इव ही देवाः प्रत्यक्षद्विषः॥

अर्थात् जाहिर (स्पष्ट) की तरफ न तवज्जह (ध्यान) करने वाले बल्कि मतलब (अर्थ) की तरफ़ जाने वाले ही देवता हैं। पशु का जीवन सिर्फ वर्तमान (**Present**) का जीवन है, जो कुछ उसके आगे रखो, उसका दिल उसको खाने को चाहता है, परवाना लम्प की रोशनी पर मस्त हो जाता है, उसे यह खबर नहीं कि रोशनी की आग उसे जला देगी। वह केवल प्रत्यक्ष सेवी है, और उसे परोक्ष की खबर ही नहीं। जो आदमी धर्मात्मा नहीं है, जो धर्म की तरफ रुचि नहीं रखता, जिस में संयम नहीं, वह विषय को देख कर उस तरफ भाग पड़ता है, संसार के विषय हम को अपनी तरफ

खैंचते हैं, और विषय हम को ढलवान की तरफ ले जाते हैं, और नेकी ऊंचाई को तरफ। जिस तरह पहाड़ की ऊचाई की तरफ चढ़ना कठिन है, और ढलवान की तरफ मनुष्य आप ही आप बहा जाता है, ठीक वैसे ही संसार में विषयों का जीवन उतराई का जीवन है, और आसान है, आदमी आप हो आप भागा चला जाता है, मगर उच्च शक्तियों की तरफ चढ़ना उस के लिये मुशकिल हो रहा है। इस लिये हमारे शास्त्रकारों ने यह कहा है, कि देवता वह लोग हैं, जिन में संयम आदि पाये जाते हैं, अब यह जितनी शक्तियां हं अर्थात् सौ वर्ष तक जीना, सौ वर्ष तक चलना, सुनना, देखना आदि इन सब को संयम के साथ इस्तेमाल करना चाहिये। वह आदमी जो सौ वर्ष तक तो जीता है, मगर बुरी चीज़ों को देखता है, गंदी पुस्तकें पढ़ता है, गंदे विषय भोगता है, क्या उसकी ज़िन्दगी वैदिक ज़िन्दगी हो सकती है! क्या उसकी ज़िन्दगी और कुत्ते की ज़िन्दगी में कोई फ़रक है? इसी तरह से जो मनुष्य गन्दे गीत सुनता है, और सदैव निन्दा स्तुति में लगा रहता है, तो क्या सचमुच उसके कान अपने असली उद्देश्य को पूरा कर रहे हैं? वह आदमी जिस की रोटी दूसरों के आधीन है, क्या वह कह सकता है, कि मैं स्वाधीनता से जीवन व्यतीत कर रहा हूं। ऐसा जोवन वैदिक जीवन कदापि नहीं हो सकता, यह पशु जीवन है। यह वह जीवन नहीं है, जिस के लिये वेद मन्त्रों में हमारे लिये प्रार्थना की गई है, कि इस शुभ भावों से सुशोभित हुए २ शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति को करें। अच्छी तरह से रहें, बोलें, देखें और अपने जीवन को सफल करें, हमारे अन्दर आधीनता का भाव न हो और उस के लिये इन मन्त्रों में प्रार्थना की गई है।

परमात्मा हम को राह दिखाने वाले हैं, वह हमारे हितकारी हैं, कभी नुकसान नहीं पहुंचाते, सदा पवित्र हैं, वह हमारे अन्दर साधु भावों को पैदा करें, ताकि हम पशु जीनन से निकल कर देव जीवन की तरफ झुकें। सदैव इसके वास्ते प्रार्थना करते हैं।

आर्य जीवन हमें केवल प्रत्यक्ष की तरफ हटा कर परोक्ष की तरफ ले जाता है। दो बातों की तरफ हमें अवश्य ध्यान करना चाहिए। प्रथम यह कि हम इसी संसार को ही अपना प्रत्यक्ष जीवन न मानें आज प्रत्यक्षवादी यह कहते हैं, कि यही जीवन, यही संसार सब कुछ है, इस किसम के लोग नास्तिक हैं। कठोपनिषद् में यमाचार्य कहते हैं :—

न सांपरायः प्रतिभाति बालं
प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम् ।
अयंलोका नास्ति पर इति
मानी पुनः पुनर्वशमापद्यतेमे ।१।२।६।।

अर्थ—एक प्रमादी बाल को जो धन के मोह से मोहित है, परलोक नहीं भासता। "यह लोक है कोई दूसरा नहीं" ऐसा मानने वाला फिर-फिर मेरे वश पड़ता है और उनका जीवन आर्य्य सिद्धान्त के विरुद्ध है। मगर इस के अर्थ आप कदापि यह न समझें, कि आर्य्य जीवन में केवल परोक्ष ही होना चाहिये और प्रत्यक्ष को बिलकुल भुला देना चाहिये, ऐसा कदापि नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष और परोक्ष अपने में मिलाना चाहिये। जहां हम प्रत्यक्ष को देखें, वहां परोक्ष का भी ख्याल रक्खें और जहां परोक्ष का चिन्तन करें वहां प्रत्यक्ष भी हमारे सामने है।

हमारा जीवन इस किसम का होना चाहिए जिसमें हमारी जुबान, हमारे कान, आंख और दूसरी शक्तियां पाप में इस्तेमाल

ही न होने पावें। हमारा आचरण वेदानुकूल हो। इसी लिए प्रार्थना की गई है, कि हे परमात्मा! हमारा जीवन शुद्ध हो, और जिन शक्तियों का ऊपर ज़िकर किया गया है, उनका इस्तेमाल आपकी आंखों के सामने हो, और हम इन्हें इसी तरह से बरतें, जिस तरह से कि आप रास्ता दिखलाएं, और हमारा मर्ज़ी आपके अधीन हो।

गायत्री मन्त्रः ।

(पं० राजाराम जी प्रोफैसर द्वारा व्याख्यात्)

गायत्री की महिमा और स्वरूप ।

यह वह पवित्र मन्त्र है, जिसकी महिमा सारे शास्त्रों ने गाई है। श्रुति, स्मृति, पुराण इतिहास भी इसके गुण गाते हैं । शास्त्रों में इस मन्त्र के जप पर बड़ा बल दिया है। लिखा है, कि यह मन्त्र जहां एक ओर शारीरिक रोगों और दुःखों की निवृत्ति तथा आरोग्य और सुखों की प्रवृत्ति का साधन है, वहां दूसरी ओर आत्मा को परमात्मा से मिलाकर परम आनन्द में मग्न करने का तीव्रतर उपाय है। मन्त्र यह है—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः ।
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

इसके पवित्र अर्थों को जानने से पहले आप एक दो स्थूल बातों की ओर ध्यान दे लें।

इस मन्त्र के नाम और उनका निर्वाचन ।

इस मन्त्र को गायत्री, सावित्री, गुरुमन्त्र, वेदमुख वा वेद-माता कहते हैं। गायत्री छन्द का नाम है, जिसमें यह मन्त्र गाया जाता है। गायत्री मन्त्र २४ अक्षरों का होता है, और उनके तीन पाद होते हैं। प्रत्येक पाद आठ अक्षर का होता है। यह मन्त्र इस छन्द में पढ़ा गया है, इसलिए इसका नाम गायत्री है । वेदो में और भी बहुत से मन्त्र गायत्री छन्द में हैं। पर यह मन्त्र अपनी

निराली महिमा के कारण इतना प्रसिद्ध हो गया है, कि गायत्री मन्त्र कहने से यही समझा जाता है ।

गायत्री मन्त्र 'तत्सवितुः' से आरम्भ होता है । ऋग्वेद और सामवेद में यह मन्त्र इतना ही है । और यजुर्वेद में भी ३३ वें अध्याय के अतिरिक्त सर्वत्र इतना ही आया है । यह भेद क्यों हैं ? वस्तुतः गायत्री मन्त्र तो इतना ही है । 'भूर्भुवः स्वः' यह पहले तीन महाव्याहृतियां बड़े रहस्य के शब्द **(Great mystical words)** हैं । शतपथ ब्राह्मण में लिखा है, "तीनों लोकों का सार तीन प्रकार के मन्त्र हैं । त्रिविध मन्त्रों का सार तीन महाव्याहृतियां हैं, तीन महाव्याहृतियों का सार "ओ३म्" है । महाव्याहृतियों से पहले "ओ३म्" शब्द है । स्मरण रहे, कि किसी वेदमन्त्र के आरम्भ में ओ३म् शब्द नहीं, पर ओ३म् शब्द वेदमन्त्र का एक माना हुआ भाग है इसके बिना वेदमन्त्र पूर्ण नहीं गिना जाता । भगवान् मनु ने कहा है "वेदपाठ के आरम्भ में ओ३म् न उचारा जाए, तो वह पाठ बह जाता है" (जिस तरह पहाड़ पर पानी ज़ोर से बरसता है, और बह जाता है, पहाड़ पर उसका बहुत थोड़ा असर होता है, इसी तरह ओ३म् शब्द के पढ़े बिना मन्त्र का बहुत थोड़ा असर होता है, इस लिये ओ३म् वाच्य परमात्मा को हृदय में रख कर मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये) ।

पूर्व कह आए हैं, कि गायत्री छन्द २४ अक्षरों का होता है, पर इस में २३ अक्षर हैं । "ऐतरेय ब्राह्मण १।१।६ में कहा है" "एक वा दो अक्षर की त्रुटि से छन्द बदल नहीं जाते" पिंगल में ऐसे छन्द को जिस में एक अक्षर न्यून हो, निचृद् नाम दिया है । सो पिंगल के अनुसार यह निचृद् गायत्री है । मात्रा की न्यूनता को गाने में पूरा करने के लिये यह नियम है, कि "य, व" के

किसी दूसरे व्यंजन के साथ संयोग को "य, व' से पूर्व" "इ, उ" बढ़ा कर अलग कर लेते हैं। इस नियम से "वरेण्यं" को "वरेणियं" पढ़ने से मात्रा पूरी हो जाती हैं।

सावित्री—इस मन्त्र को सावित्री कहने का यह कारण है, कि इस का देवता सविता है।

गुरुमन्त्र—गुरु मन्त्र कहने का एक तो यह कारण है, कि जब गुरु अपने शिष्य को वेदारम्भ कराते हैं, तो पहले यही मन्त्र उपदेश करते हैं। दूसरा यह, कि इस में परमगुरु परमात्मा की प्रेरणा पर चलने की शिक्षा दी है।

वेदमुख वा वेदमाता—वेद का पढ़ना और प्रतिपादन स्वाध्याय का आरम्भ भी इस से होता है, इस लिये वेदमुख कहा है। और वेदमाता इस लिये कि यह सारे वेद को पढ़ने का अधिकार दिला देता है, इस के पीछे वेद आते हैं। अथर्ववेद में यह एक मन्त्र है, जिस को गायत्री मन्त्र के जप के पीछे वा स्वाध्याय के पीछे पढ़ते हैं—

स्तुता मया वरदा वेदमाता
प्रचोदयन्तां पावमानो द्विजानाम्।
आयुः प्रजां पशुकीर्ति
द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्।
मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥

अर्थ—मैंने वेदमाता की स्तुति की है, जो द्विजों के पवित्र करने वाली है, वह मेरे लिये दीर्घ आयु, नेक सन्तान, पशु, कीर्ति, धन और धर्म के तेज को प्रेरे और यह सब कुछ देकर ब्रह्मलोक में प्रवेश कराए।

ओ३म् की व्याख्या ।

ओ३म् शब्द की बनावट में गौरव

"ओ३म्" परमात्मा का मुख्य नाम है। मुख्य नाम होने में इस के दो हेतु हैं। एक शब्द की बनावट दूसरा अर्थ।

परमात्मा व्यापक है, उनका मुख्य नाम वही होना चाहिये, जो वाणी की उत्पत्ति के सारे स्थानों को व्याप जाए। वाणी की उत्पत्ति के स्थान, कण्ठ से लेकर होठों तक हैं और "ओ३म्" "अ, उ, म्" इन तीन अक्षरों से बना है। इन में से "अ" कण्ठ में उच्चारण होता है, "उ" सारे मुख की वायु से भरता हुआ उच्चरित होता है, उसके पीछे "म" निरा होठों में उच्चरित होता है। इस प्रकार वाणी के सारे स्थानों को व्यापने वाला, तिस पर भी छोटा सा और स्वर भर कर उच्चारण किया जाने वाला नाम "ओ३म्" ही हो सकता है, और कोई नहीं। यह भारी गुण इस की बनावट में है। दूसरा यह भी कि "ओ३म्" अव्यय है। अव्यय उन शब्दों को कहते हैं, जिन में कोई तबदीली नहीं होती, एक ही रूप में बने रहते हैं, परमात्मा में भी कोई तबदीली नहीं होती, सदा एक से वर्त्तमान रहते हैं. इसीलिये परमात्मा को अव्यय कहा है, सो इस सादृश्य से भी यह परमात्मा का मुख्य नाम होने के योग्य है।

अर्थ की अपेक्षा से भी इस नाम में बड़ी योग्यता है। ओ३म का संक्षेपतः अर्थ यह है. "अ" का अर्थ वैश्वानर अर्थात् इस स्थूल जगत् का अधिष्ठाता प्रेरक और नियन्ता "उ" का अर्थ हिरण्यगर्भ अर्थात् सूक्ष्म जगत् का अधिष्ठाता=प्रेरक और नियन्ता। "म्" का प्राज्ञ अर्थात् कारण रूप प्रकृति का अधिष्ठाता=प्रेरक और अन्तर्यामी नियन्ता। सो इस प्रकार इस नाम से परमात्मा को स्थूल सूक्ष्म प्राकृत जगत् और उसका मूल कारण प्रकृति इन सब का

परिचालक और वश में रखने वाला बतलाया गया है। जब-जब तुम ओ३म् का उच्चारण करो, तुम्हारा मन परमात्मा को इस प्रकार अधिष्ठाता रूप से देखे *।

व्याहृतियों का अर्थ भूः=सत्। भुवः=बनाने वाला=चित् (क्योंकि बनाने वाला सर्वत्र चेतन है) स्वः=सुख=आनन्द।

सो, सत्, चित्, आनन्द यह अर्थ हुआ, यही अर्थ स्वामी शंकराचार्य ने लिया है।

सारांश—ओम्-सत्, चित्, आनन्द।

अर्थात्—स्थूल, सूक्ष्म, जगत् और मूल प्रकृति का अधिष्ठाता सत्, चित्, आनन्द स्वरूप।

यह परमात्मा का स्वरूप है, जो गायत्री के आदि में पाया जाता है, सो इस प्रकार मन्त्र का पूरा अर्थ यह हुआ—

गायत्री मन्त्र का सम्पूर्ण अर्थ।

ओ३म्—सत्, चित्, आनन्द। उस प्रेरक देव के सब से उत्तम जाज्वल्यमान तेजोमय रूप का हम ध्यान धरते हैं, जो हमारी बुद्धियों को प्रेरे।

व्याख्यान—इस मन्त्र में परमात्मा को सविता अर्थात् प्रेरक के नाम से स्मरण किया है, और अब यह याचना की है, कि वह हमारी बुद्धियों के प्रेरक हों। यह विश्व उनकी प्रेरणा में चल रहा है। उनकी आज्ञा को कोई उलांघ नहीं सकता। प्रभु का ठीक इसी तरह आज्ञाकारी बनने की यह मन्त्र हमें शिक्षा देता है। हमें ईश्वरपरायण होना सिखलाता है, अर्थात् हम अपना सारा भरोसा ईश्वर पर छोड़ दें, कहें हे भगवन्! तुम

* ओ३म् पर विशेष व्याख्यान के लिये देखो "ओंकार की उपासना और माहात्म्य।"

जो चाहते हो, हम से करवाओ। ऐसी पूरी सच्ची भावना से गायत्री मन्त्र जपो, तो बहुत जल्दी परम गुरु परमात्मा तुम्हें प्यार करेंगे और तुम्हारे प्रेरक बन कर शुभ मार्ग से ले चलेंगे। जिस प्रभु ने तुम्हें जन्म दिया है, जिस ने तुम्हारे लालन पालन के लिये माता पितरों को जगत् में उत्पन्न किया है, जिस ने तुम्हारे निर्वाह के लिए अनन्त वस्तुएं उत्पन्न की हैं, उस जगत् प्रभु ने तुम्हें अकेला नहीं छोड़ा है वह अन्तर्यामी रूप से तुम्हारे हृदय में बैठे हैं, तुम अपना मन उनको सौंप दो, भक्ति भावना से आतुर होकर उनको पुकारो। इसीलिये तो यह गुरु मन्त्र कहलाता है कि आदि गुरु की प्रेरणा को समझने और उस पर चलने का हमें उपदेश देता है। अतएव वेदारम्भ में गुरुजन इसी का पहले उपदेश करते हैं और इसीलिए उपनयन के समय जब गुरु अपने ब्रह्मचारी को पूछता है, "कस्य ब्रह्मचार्यसि"=तू किस का ब्रह्मचारी है तो इसके उत्तर में जब बालक कहता है "भवतः"=आपका। तब आचार्य कहता है **"इन्द्रस्य ब्रह्मचार्यस्यग्निराचार्यस्तवाहमाचार्यस्तव"**=तू किस का ब्रह्मचारी है, अग्नि तेरा आचार्य है, मैं तेरा आचार्य हूं। अर्थात् पहले उसको परमात्मा का ब्रह्मचारी बनाकर परमात्मा में आचार्यत्व स्वीकार करके पीछे अपना आचार्यत्व स्वीकार करता है। इसलिये कि परम गुरु मनुष्य का परमात्मा है, जो सदा अन्तर्यामी रूप से उसके हृदय में स्थित है। उस गुरु से शिक्षा ग्रहण करना और उस पर चलना किस तरह से होता है, यही सिखलाना इस दूसरे गुरु का काम है। इन्द्र बल का अधिष्ठाता और अग्नि प्रकाश का अधिष्ठाता होने से परमात्मा को कहा है। सो इस मन्त्र को जपते समय पूरी भावना से ईश्वर परायण हो जाओ, सारा भरोसा उस पर

छोड़ दो, वह तुम्हारा गुरु होगा और अपनी दोनों शक्तियां बल और प्रकाश प्रदान करेगा। उसकी प्रेरणा को ग्रहण करो और उस पर चलो। यही ईश्वरपरायणता है, यही आत्म समर्पण है, कि अपने आपको ईश्वर के समर्पण कर दो। बस इतना ही तुम्हारा काम है, फिर वह आप तुम्हें सम्भाल लेंगे। बिल्ली का बच्चा केवल इतना ही जानता है, कि किस प्रकार "म्याओं, म्याओं" करके अपनी माता को पुकारना है। उसकी पुकार सुन कर बिल्ली आप ही दौड़ आती है। फिर आगे क्या करना यह सब वही जानती और वही करती है कभी दूध पिलाती है, और कभी एक जगह से दूसरी जगह ले जाती है। ठीक इसी तरह परम दयालु परमात्मा माता को पुकारना सीखो, आगे तुम्हारा योग क्षेम वह आप उठा लेंगे, गीता में लिखा है, कि जो इस तरह मेरे परायण होते हैं, उनका योग क्षेम मैं उठाता हूं। इस परम तात्पर्य को अनुभव करते हुए गायत्री मन्त्र को जपो, बहुत जल्दी इस का फल अनुभव कर लोगे, तुम्हारे हृदय में प्रकाश बढ़ जायगा और पाप की सारी कामनाएं मिटती जाएंगी, गायत्री जप के विषय में भगवान् मनु अपना यह निश्चय बतलाते हैं:—

सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत् त्रिकं द्विजः।
महतोप्येनसोमासात् त्वचेवाहिर्विमुच्यते ॥

(मनु० २। ७९)

अर्थ—जो द्विज बाहर (एकान्त में) इन तीनों (ओ३म्, महाव्याहृतियों और गायत्री) को सहस्रबार प्रतिदिन जपे, तो एक महीना जप करने से बड़े भारी पाप से भी इस तरह अलग हो जाता है, जैसे सांप केंचुली से।

और फिर उसके आगे यह कहते हैं :–

ओंकार पूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्यया।
त्रिपदाचैव सावित्रीविज्ञेयं ब्रह्मणोमुखम् ॥८१॥

ओंकार पूर्वक तीन महाव्याहृतियें जो कि अविनाशी हैं, और तीन पदों वाली सावित्री यह ब्रह्मा का मुख जानना चाहिये। (अर्थात् परमात्मा का द्वार)।

योऽधीतेऽहन्यहन्येतांस्त्रीणिवर्षाणियतन्द्रितः।
स ब्रह्मपरमभ्येति वायुभूतः स्वमूर्तिमान् ॥८२॥

जो एकाग्र मन होकर दिन प्रतिदिन तीन बरस तक लगातार इनको जपता है, वह शरीर रहित हुआ वायु की तरह स्वेच्छाचारी हुआ परब्रह्म को प्राप्त होता है।

कथा—–इस परम पवित्र गायत्री जप के विषय में बहुत सी प्राचीन और नवीन समय को कथाएं हैं, ग्रन्थ विस्तार के भय से उनको न लिख कर केवल अकबर के समय की एक कथा यहां लिखते हैं:—–

अकबर और वीरबर (बीरबल) दोनों बाजार में से गुज़र रहे थे। अकबर ने देखा, कि एक ब्राह्मण दुकान–२ पर कौड़ियां मांगता फिरता है। एक दुकानदार ने उसे कुछ न देकर झिड़क दिया, और वह फिर अगली दुकान पर जा खड़ा हुआ। यह दृश्य देख अकबर ने वीरवर से कहा, देखिए वीरवर यह आपका पूज्य ब्राह्मण है। वीरवर के दिल पर इस ताने ने एक चोट सी लगाई और उसने दिल में ठान लिया, कि इस को पूज्य बनाकर ही छोड़ूंगा। वीरवर ने उस समय तो कुछ उत्तर न दिया, और अकबर के साथ अपने काम पर चला गया। दूसरे दिन उस ब्राह्मण से पूछा, तुम क्यों मांगते हो, उसने कहा निर्वाह के लिये।

तुम्हारा कितने में निर्वाह होता है ? आठ आने में, आठ आने प्रतिदिन मुझ से ले जाया करो, और यमुना तट पर जाकर मेरे लिये दस बार गायत्री जप किया करो। ब्राह्मण ने स्वीकार किया, और प्रतिदिन ऐसा करने लगा। कुछ दिन पीछे उसने सोचा, दस बार वीरवर के लिये जपता हूं, दस बार अपने लिये भी जप करूं। ऐसा करने से उसके चेहरे पर तेज आने लगा, और मुख से विशाल हृदय की बातें निकलने लगीं। वीरवर ताड़ गया, और उसने कहा, ब्राह्मण मुझ से सहस्र रुपया मासिक लो, और सौ बार गायत्री का जप करो। ब्राह्मण ने ऐसा किया, पर साथ ही अपने जप को भी बढ़ा दिया, और बढ़ाता चला गया। अपने जप के आनन्द में उसे ध्यान आया, कि वीरवर गायत्री की सच्ची महिमा को जानता है और मेरे निर्वाह से बहुत बढ़ कर मुझे देता है, और केवल सौ बार गायत्री जपवाता है, क्या वह भगवान जो वीरवर को देता है, मुझे नहीं देगा। "मानस मजदूरी देत है, तो क्यों राखे भगवान्" आज उसने गायत्री के सच्चे अर्थ को पा लिया, उसने वीरवर से अपना भरोसा उठा लिया, और भगवान् पर भरोसा किया। अहह ! इस भरोसे से उसे नया आनन्द मिला है, और वह अपनी सुध भूल कर जप में लगा है। वह तो अपने आप को भूल गया है, पर जिसने माता के पेट में उसकी सुध ली थी, वह अब कैसे भूल सकता है। एक भक्तजन वहीं उसके खाने के लिये ले आया, और प्रणाम करके चला गया। अब लोगों में उसकी अटल भक्ति की चर्चा फैली, और उसके जीवन निर्वाह के लिये वहीं उसको भोजन आदि आने लगा। महीना समाप्त हुआ, पर वह रुपया लेने के लिये वीरवर के पास न गया। वीरवर ने एक सप्ताह और प्रतीक्षा की, और रुपया लेकर स्वयं उसके पास गया और कहा, महाराज आप रुपया लेने नहीं आये।

उसने कहा, मेरे निर्वाह के लिये सब कुछ यहीं आ जाता है। मैं अब आप से कुछ नहीं लूंगा। बीरवर ने रुपया आगे ढेरी करके कहा, तो भी यह पिछले रुपये तो लें, जिन का आप ने जप किया है। उसने कहा नहीं, यह ले जाइये, आप ने मुझे रास्ते पर डाला है, और इस महीने का जप मैं उसके बदले में देता हूं। बीरवर ने समझा, कि अब वह सचमुच पूज्य हो गया है। ब्राह्मण की भक्ति ने अब बड़ी ख्याति लाभ कर ली थी, यहां तक कि अकबर के कानों तक उसकी अटल भक्ति की प्रशंसा पहुंची। एक दिन अकबर बीरबर को साथ ले उसके दर्शनों को गये। और एक दुशाला और अशर्फियों का थाल भेंट धरा। ब्राह्मण ने कहा, इसे ले जाओ, मुझे अपेक्षित नहीं, बीरवर ने कहा, महाराज जी यह शहन्शाह अकबर हैं, ब्राह्मण ने कहा, मैं अकबर से बड़ा हूं, बीरवर ने तीन बार यही उत्तर पाया, पर तीसरी बार इतना अधिक कहा गया। जिसने मुझे अपना लिया है, अकबर उसी के द्वार का भिखारी है। अकबर ने उसके चेहरे की ओर देखा, और तेज न सहार सका, सच है, "तेजो वै ब्रह्मवर्चसम् गायत्री, तेजस्वी ब्रह्म-वर्चसी भवति य एवं वेद"=तेज ब्रह्मवर्चस गायत्री है, वह तेजस्वी और ब्रह्मवर्चसी हो जाता है, जो इस रहस्य को जानता है। अकबर दर्शन करके लौटा मार्ग में बीरवर से कहा अहह! मैंने आज तक ऐसा तेजस्वी कोई नहीं देखा, इस पूज्य तपस्वी के दर्शन से हृदय कितना हर्षित हुआ है कहा नहीं जा सकता, बीरवर ने कहा बादशाह सलामत! यह वही कौड़ियां मांगने वाला ब्राह्मण है। अकबर हैरान हो गया, यह कैसे? बीरवर ने कहा, यह सब गायत्री का प्रताप है। पहले इसको अपने घर की खबर न थी, इस लिये मांगता था। अब इसने अपने इष्ट को पहचान लिया है और निहाल हो गया है, हां अब यह वही पूज्य है।

वस्तुतः हमारे अन्दर गायत्री की महिमा उस वेग से उत्पन्न नहीं होती है, जिस वेग से होनी चाहिये थी, यदि उसकी सच्ची महिमा का भेद हम पर खुल जावे, तो फिर कोई बात है कि इस के जप से हमारे हृदय पवित्र न हो जाएं। सच्चे हृदय से इसका जप करो, तो फिर देखो, कि किस तरह आप के हृदय प्रकाशमान होते हैं। चेहरों पर कैसे तेज आता है। जब ऐसे भरोसे, ऐसे प्रेम, ऐसी अटल भक्ति के साथ गायत्री का जप करेंगे, तो आप एक ही दिन के जप में अपने अन्दर बड़ा परिवर्तन देखेंगे। जब आप अपना भरोसा परमेश्वर पर छोड़ दें, तो भला यह कभी हो सकता है? कि परमेश्वर आप को भुला दें। वह अपने भक्तों को जो उन पर भरोसा करते हैं, सदा ही रक्षा करते हैं। इस अटल विश्वास को लेकर गायत्री का जप करो, और परमेश्वर के सच्चे भक्त बनो।

गायत्री मन्त्र के गम्भीर अर्थ और आशय पर श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज और पूर्वाचार्यों ने बहुत २ प्रकाश डाला है। यहां संक्षेप के विचार से एक ही अध्यातम अर्थ के विचार पर बस किया है।

ओ३म् सत् चित् आनन्द ।

ऊपर गायत्री मन्त्र में भी यही प्रार्थना की गई है, कि हम पवित्र बनें, परमात्मन्! आप हमको अपनी तरफ ले जावें, बुद्धि को बल दें, चूंकि आप हाथ से पकड कर ले जाने वाले और रास्ता दिखाने वाले हैं, यह सारी शक्तियें आप के अधीन हों, और कभी आप के हुकम के बाहर न हों, बल्कि वह आप के हुकम के अन्दर चलें।

धन्य है वह पुरुष जिस की शक्तियें परमात्मा की आज्ञा में हैं, और जो अपने जीवन को परमात्मा के प्रेम और विश्वास में गुजारता है।

आप ने देखा होगा कि जब इन्सान (मनुष्य) पर **Hypnotism** का अमल कारगर (प्रभाव) होता है, तो उस समय उसकी क्या हालत होती है, पहिले मनुष्य अपने मन के संकल्प विकल्प छोड़ कर चित्त को ढीला छोड़ देता देता है और फिर आमल (प्रभाव डालने वाला) उसे कहता है कि तुम मेरे बरखिलाफ (विरोध) चलने की कोशिश मत करो, अर्थात् मुझे **resist** मत करो। अपनी मरज़ी मत रक्खो, बल्कि अपना मन मेरी मरज़ी पर छोड़ दो, जब मीडियम **hypnotised** हो जाता है, तो अमल करने वाला उस पर ग़लवा हासिल कर लेता है, (प्राभव प्राप्त कर लेता है) और फिर उस से किसम २ के कर्तव कराता है, उसे रुलाता है, हंसाता है, नचाता है, और जो काम चाहे उस से ले सकता है। इसी तरह से अगर हम चाहते हैं, कि हगारा जीवन देव जीवन हो, तो हमारे लिये यह एक लाजम अमर (आवश्यक) है कि हम अपने आप को ढीला छोड़ कर ईश्वर परायण हो जावें और परमात्मा की शक्तियों को अपने ऊपर अमल करने दें। जो अमल करवाना नहीं चाहते, परमात्मा उन से दूर है, और जो अपने आप को परमात्मा के अधीन कर देते हैं, परमात्मा उन के निकट से निकट हैं। विश्वासमय हो कर सब से पहले प्रणिधान का भाव अपने अन्दर पैदा करो, और फिर तुम्हारी इन्द्रियां पवित्र होंगी। और तुम्हारी शक्ति बढ़ेगी।

गायत्री मन्त्र में दो बा ें ख़ास काबिल गौर (विशेष विचारणीय) हैं।

(१) यह कि हम परमात्मा को अपने हृदय में धारण करें।

(२) परमात्मा हमारी बुद्धि को प्रेरणा करें, वह हमारे मन में, हृदय में, बुद्धि में, विराजमान हों।

जब यह भाव हमारे अन्दर होगा तो हमारे दिल और दिमाग़ रोशन और पवित्र होंगे। इसी तरह से इन्द्रियों की शक्तियों को परमात्मा के आधीन कर देना और उस से हिदायत मांगना, यही एक धार्मिक और पवित्रता की जिन्दगी है।

आप गीता को देखें भगवान् कृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि हे अर्जुन ! तू तो निमित्तमात्र है, मैंने इन तमाम को मार दिया है, और यह है भी सत्य, जब उपासक अपनी मरज़ी को उपास्यदेव (परमात्मा) के आधीन कर देता है, तो उस से कोई काम ऐसा नहीं हो सकता, जो परमात्मा की मर्ज़ी के बरखिलाफ हो, इसी तरह से जो भक्त लोग या महान् पुरुष हैं अगरचे वह सांसारिक कामों में लगे रहते हैं, मगर वह इन कर्मों में महज़ निमित्तमात्र होते हैं। अपने आत्मा को अनन्त करके उपासक आखरी मन्त्र में प्रार्थना करता है, वह मन्त्र यह है--

समर्पण मन्त्रः ।

ओ३म् नमः शम्भवाय च मयोभवाय च
नमः शङ्कराय च मयस्कराय च
नमः शिवाय च शिवतराय च ॥

यजु० १६।४१

अर्थ—हे भगवन् ! शिव भगवान् प्रभू आप भौतिक और पारमार्थिक सुख देने वाले हैं, आप के सामने पूर्ण रीति से नमस्कार करते हैं ।

अगर हम ने सन्ध्या की, तो इस भाव से कि हम को यह मिले और हम को वह मिले । अगर हम ने गायत्री जप किया, तो इसलिये कि हम को धन मिले और हमारी शक्तियां अच्छी हों ।

हां यह सब कुछ अच्छा है, मगर हे भगवन् ! जब हम आपका आश्रय लेंगे तो फिर ऐश्वर्य हम से कहां भाग सकता है और यह चीजें कब हम से दूर रह सकती हैं, हे न्यायकारी परमात्मा जब हम आपका चिन्तन करते हैं, तो न्याय का भाव किस तरह हम से परे रह सकता है, हे दयालु पिता ! आप दया के भण्डार हो, आप नियन्ता हो और सकल जगत् को अपने नियम में रखने वाले हो, यह सब कुछ आपके अन्दर मौजूद है और हमने सब कुछ आपके आश्रय पर छोड़ दिया है । लेकिन किसी बैरूनी चीज़ के वास्ते नहीं (अगरचे वह भी अच्छी हैं) बल्कि केवल पवित्रता के लिये । इसे आत्मसमर्पण मन्त्र कहते हैं । लोग इसे सिर्फ सन्ध्या का आखिरी मन्त्र यानी खातमे का

मन्त्र ही समझते हैं, और नमः का अर्थ सिर्फ हाथ जोड़ कर नमस्कार कर देना ही काफी समझते हैं, जरा आप स्वामी जी की व्याख्या की ओर ध्यान करें, यह केवल खातमे का मन्त्र नहीं, बल्कि यह है आत्मा को समर्पण करने का मन्त्र। इस में प्रार्थना है, कि हम अपनी मरजी अपनी शक्तियां, कर्म, इच्छा और शरीर, सब कुछ हे दीनानाथ आपके समर्पण करते हैं। क्या ऊंचा आदर्श है, कितनी उच्च प्रार्थना की गई है। यह भाव हम को पहाड़ की चोटी की तरफ ले जाते हैं। इस में कोई शक नहीं, कि हम पवित्र हैं और वह चोटी जिस पर हमने चढ़ना है, बहुत ऊंची है; मगर हमारा धर्म है कि हम उस पर चढ़ने का प्रयत्न करें। हम कई बार गिरेंगे, मगर फिर उठें, और हिम्मत और उत्साह से अपने आप को परमात्मा की गोद में ले जाने की कोशिश करें। आओ हम सब मिल कर परमात्मा से प्रार्थना करें, कि हे दयानिधे परमात्मन्! आप हम को शक्ति दें, ताकि हम अपने आप को आप के आश्रय पर डाल सकें, हम को बल दो, ताकि हम आप के चरणों में उपस्थित हो कर आप की हिदायत (शिक्षा) को कबूल कर सकें, हमारी इन्द्रियां आप के अधीन हों, हमारी बुद्धि निर्मल हो, और हम खुदगरजी (स्वार्थ) से खाली रहें। आत्म समर्पण का भाव अपने अन्दर मजबूत हो, हे दीनानाथ! आप करुणा करो, और हमें शक्ति दो, कि हम अपने आप को आप के चरणों में डाल सकें। दयामय परमात्मा आप हमारी इस तुच्छ प्रार्थना को स्वीकार करो॥

ओ३म् शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

महात्मा हंसराज जन्म-शताब्दी के उपलक्ष्य में

हंसराज साहित्य विभाग का नवीन प्रकाशन

(१) महात्मा हंसराज **Maker of the modern Punjab**
(ले० प्रिंसीपल श्रीराम जी शर्मा एम. ए.) इंगलिश में— १.५०

(२) जीवन व्यापार–ले० प्रिंसीपल दीवानचन्द्र जी एम.ए.)– ०.७५

(३) म० हंसराज जी ,, ,, ,, — १.००

(४) दयानन्द हिज़ लाईफ़ एण्ड वर्क (ले० प्रिंसीपल सूर्यभानु जी एम.ए. वायस चांसलर पंजाब यूनिवर्सिटी, इंगलिश में— १.५०

(५) संध्या पर व्याख्यान (ले० स्व० महात्मा हंसराज जी) १.००

(६) सत्यार्थ प्रकाश का भाष्य (१ समुल्लास) ले० वाचस्पति जी एम० ए० १/-

(७) ,, ,, (२ य समुल्लास) ले० वाचस्पति जी एम० ए० १/-

प्राप्ति स्थान–महात्मा हंसराज साहित्य विभाग
आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा निकट कचहरी जालन्धर

वीर मिलाप प्रैस, मिलाप रोड, जालन्धर